महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलाससमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६३ अंक : ०५

दयानन्दाब्दः १९७

विक्रम संवत्: फाल्गुन कृष्ण २०७७

कलि संवत्: ५१२१

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२१

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

ijkidkjh

मार्च प्रथम २०२१

अनुक्रम

०१. वैदिक राज्यव्यवस्था की उपेक्षा करके...	सम्पादकीय	०४
०२. अग्नि सूक्त-०१	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		१०
०४. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०५. महाभारत में दर्शन शास्त्र	उदयवीर शास्त्री	१७
०६. महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज...	डॉ. बलवीर आचार्य	२०
०७. संस्था की ओर से...		३१
०८. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

वैदिक राज्यव्यस्था की उपेक्षा करके हमने क्या पाया ?-(१)

अतीत से वर्तमान संवरता है और वर्तमान से भविष्य बनता है। आजाद भारत का संविधान और व्यवस्था-तन्त्र बनाते समय हमने अपने वैदिक अतीत की उपेक्षा की और आयातित चिन्तन को आधार बनाया। राजनैतिक व्यवस्था के कुछ बिन्दुओं पर विवेचन करने पर यह निष्कर्ष सामने आया है कि हम न तो 'हम' ही रह सके और न 'वो' बन सके। हमारे वैयक्तिक और राष्ट्रीय चरित्र का निरन्तर पतन हुआ है और व्यावहारिक जटिलताएँ बढ़ी हैं।

लोकतन्त्र लाभकारी और लुभावना है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु लोकतन्त्र में रह गई त्रुटियों ने लोकतन्त्र की महिमा को खण्डित कर दिया है। देश को संचालित करने का और उन्नत करने का दायित्व जिस वर्ग पर है उन राजनीतिक प्रतिनिधियों पर बौद्धिक योग्यता, मर्यादित चरित्र और यथायोग्य दण्ड के नियम और प्रतिबन्ध शिथिल एवं असफल हैं। वैदिक राज्यव्यवस्था में प्रत्येक वर्ग के लिये उक्त नियमों के यथायोग्य प्रावधान थे। बौद्धिक योग्यता का अर्जन, मर्यादित नियमों अर्थात् धर्म का पालन तथा न्याय का आचरण अनिवार्य प्रतिमान थे। वैदिक नीतिशास्त्रों में इस बात को बार-बार बल देकर कहा गया है-

''यथा राजा तथा प्रजा'',
''यद् राजा करोति तद् विट् करोति''
(मैत्रायणी संहिता १.१०.१३)

दोनों का एक ही भाव है- 'जो राजा करता है, वही प्रजा करती है; जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है; और होती रहेगी।'

वर्तमान प्रगतिवादी और सर्वश्रेष्ठ कही जाने वाली आयातित लोकतान्त्रिक राज्यव्यवस्था में बौद्धिक योग्यता की विसंगतियों की चर्चा करते हैं। शासकों और राजनेताओं का विद्वान् होना तो दूर की बात है, वह अंगूठाछाप भी हो सकता है। मर्यादित होना जरूरी नहीं, हाँ, व्यसनी हो सकता है। विद्वान् होने की शर्त लगाना लोकतान्त्रिक मूल्यों में हस्तक्षेप हो जाता है और व्यसनी न होने की शर्त लगाना 'प्राइवेट लाइफ' में। वर्तमान शिक्षितों और चिन्तकों के कितने अद्भुत तर्क हैं और कितनी विलक्षण व्यवस्था है! कैसी विडम्बना है कि वर्तमान राज्यव्यवस्था में यदि किसी को चपरासी होना है तो उसे आठवीं या दसवीं पास अवश्य होना चाहिये और यदि राजा, राजनेता, मन्त्री, विधायक या सांसद होना है तो पहली पास करना भी आवश्यक नहीं! देश का प्रधानमन्त्री, प्रदेशों का मुख्यमन्त्री, अंगूठाछाप चल सकता है, चपरासी नहीं। यदि आपको स्कूटर, कार चलाने हैं तो आपको अपनी उस विषयक योग्यता की परीक्षा देकर पहले एक प्रमाणपत्र (लाइसेंस) प्राप्त करना होगा किन्तु एक विशाल देश या प्रदेश को चलानेवालों को किसी योग्यता-प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं। आज का प्रशासन और न्यायालय एक आम अनपढ़ नागरिक से भी यह अपेक्षा करता है कि उसे प्रत्येक कानून की जानकारी होनी चाहिये, किन्तु कानून बनानेवाले राजनैतिक से यह अपेक्षा बिल्कुल नहीं की जाती कि वह जो कानून बना रहा है उसकी उसको जानकारी और समझ है या नहीं! आज के राजनैतिकों को यह पूरी छूट है कि वे निरक्षर अयोग्य होते हुए भी देश को चलानेवाले कानून बना सकते हैं। यह बात अलग है कि वे उनके नाम से बनाये हुए, लिखे कानूनों को पढ़ भी नहीं पाते! क्या ऐसी राज्यव्यवस्था को न्यायोचित, तर्कसंगत, जनहितकारी और राष्ट्रीयहितकारी माना जा सकता है? और क्या ऐसे नेतृत्व से कोई समाज और राष्ट्र उन्नत हो सकता है? यदि देश का राज्य और राजनीति बिना इनके चल सकती है तो अन्य क्षेत्र भी चल सकते हैं। यदि अन्य क्षेत्र इनके बिना नहीं चल सकते हैं तो देशसंचालन और विधिनिर्माण जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य बिना विद्वत्ता और योग्यता के कैसे चल सकता है?

अयोग्य, दुर्गुणी, दुर्व्यसनी राजा होगा तो वैसी ही प्रजा होगी, वैसा ही राष्ट्र होगा। अयोग्य व्यक्ति अपने से अयोग्य की कामना करता है, योग्यों से ईर्ष्या और दूरी

रखता है। राजा के लिये अयोग्यता की स्वीकृति का अर्थ है समाज और राष्ट्र में अयोग्यता का सम्मान और अभिवृद्धि।

अयोग्य, अशिक्षित और अनधिकारी शासक के नेतृत्व में कोई भी समाज या राष्ट्र प्रसन्नतामय वातावरण में रहकर बौद्धिक उन्नति नहीं कर सकता और न न्याय प्राप्त कर सकता है। वहाँ निराशा, हताशा और आपाधापी का वातावरण उभरता जायेगा। बौद्धिक प्रतिभा को प्रतिष्ठा, महत्त्व और उपयुक्त स्थान न मिलने से बौद्धिक उन्नति अवरुद्ध होती जायेगी। यह हम भारत में ही पौराणिक काल में भुगत चुके हैं। वैदिक राजनीतिज्ञों का तो इस विषय में स्पष्ट मत है-

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।।

(सुभाषित रत्नाकर)

जिस राष्ट्र में अपूज्यों=अयोग्यों का सम्मान और पूज्यों=योग्यों की उपेक्षा होती है, वहाँ अन्याय के कारण तीन प्रकार की आपत्तियाँ उपस्थित हो जाती हैं- १. दुर्भिक्ष-खाद्य एवं भोग्य पदार्थों में अव्यवस्था या कालाबाजारी, २. मरणम्-अराजकता, अपराधों से मारकाट, ३. भयम्-जनता का भय के वातावरण से त्रस्त रहकर विनष्ट होना। ऐसे वातावरण में यदि धन, बल और बुद्धि, किसी भी प्रकार की समृद्धि हो भी जायेगी तो वह चिरस्थायी नहीं रह सकती। अराजकता उसको निगल जायेगी। उस अराजकता के तीन नाम हैं- अभाव, अराजकता और विनाश। इसलिये वैदिक राज्यव्यवस्था में राजा और राजनेताओं के लिये कुछ अनिवार्य नियम बनाये गये थे जिनमें पूर्णशिक्षित और धार्मिक होना परमावश्यक थे।

वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था ने धर्म को पूजा-पाठ मानकर तिरस्कृत करके स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी है। वैदिक मनीषियों का स्पष्ट मत है कि अविद्वान् और अधार्मिक शासक कभी राष्ट्र को श्रेष्ठ मार्ग पर नहीं ले जा सकता। उसके शासन में सुख और शान्ति का वातावरण नहीं बन सकता। इसलिये वैदिक राज्यव्यवस्था में विद्या के साथ धर्म को प्रत्येक कार्यकलाप का मूलाधार और कसौटी माना गया है। पहले यह स्पष्ट कर दूँ कि धर्म का अर्थ केवल पूजा-पाठ नहीं है, इसका अर्थ 'नैतिक मर्यादित आचरण' और 'ईश्वर-विश्वास' है । धर्म वह तत्त्व है जो जीवन में धारण करने योग्य है और जिससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का कल्याण होता है। धर्म वह तत्त्व है जिसे मानवीय कर्त्तव्यों से पृथक् नहीं किया जा सकता, इसलिये वैदिक व्यवस्था में धर्म का ही एक नाम मानवता है। राजा और राजनीतिज्ञ, क्योंकि जनता के नेता होते हैं, देश के कर्णधार होते हैं, अतः उनमें धर्म की प्रधानता अपेक्षित है। धर्मपालन में दोहरे मानदण्ड नहीं होते। वहाँ निजी जीवन में भी शुचिता आवश्यक हो जाती है और सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में भी।

वर्तमान व्यवस्था राजनैतिकों तथा अन्य नागरिकों को दोहरा जीवन जीने की छूट देती है। उनकी 'सोशल लाइफ' कुछ और तो 'प्राइवेट लाइफ' कुछ और होती है। नई व्यवस्था को भ्रान्ति है कि 'सोशल और ऑफिशियल लाइफ' यदि ठीक है तो उस पर 'प्राइवेट लाइफ' का कुछ फर्क नहीं पड़ता। किन्तु वह भूल जाती है कि व्यक्ति विचारों और संस्कारों से ही संचालित होता है। वह 'प्राइवेट लाइफ' एक दिन सामाजिक और कार्यालयीन जीवन-पद्धति पर प्रभावी हो जायेगी और तब दोनों मिलकर एक हो जायेंगी। निजी जीवन में आदर्शों और मर्यादाओं का पालन न करनेवाले किसी व्यक्ति से यह आशा कैसे की जा सकती है कि वह सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में आदर्शवान् होगा? उसको देखकर जनता में भी आदर्श मूल्यों की आशा नहीं की जा सकती। यही कारण है कि आज के परिवेश में, आदर्श, नैतिक मूल्य, मर्यादाएँ, न्याय विलुप्त होते जा रहे हैं और अधर्म, अपराध, पापाचार, भ्रष्टाचार, अन्याय बढ़ते जा रहे हैं। धार्मिकता अथवा नैतिकता के अभाव में भ्रष्टाचार रग-रग में समा रहा है। वह शिष्टाचार और सम्मान का रूप धारण करता जा रहा है। भ्रष्टाचार, अपराध और अपराधियों का राजनीतिकरण होता जा रहा है। ऐसे लोग घृणास्पद के स्थान पर महिमामण्डित और प्रभावमण्डित हो रहे हैं। ऐसे लोगों का गली, गाँव, शहर, समाज में वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। आम जनता में आतंक व्याप्त है। जो जितना बड़ा भ्रष्टाचारी, आतंकी, अपराधी है, उसकी चुनाव जीतने की उतनी ही

अधिक गारण्टी है। गैर-अपराधी दर-दर घूमकर वोट माँगने पर भी जीतें या न जीतें, किन्तु महा-अपराधी जेल में ऐश करते हुए ही चुनाव जीत जाते हैं। यद्यपि चुनाव आयोग द्वारा कुछ अंकुश लगाते हुए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि प्रत्येक प्रत्याशी सम्पत्ति की घोषणा के साथ अपराधों/मुकदमों का विवरण भी प्रस्तुत करेगा, किन्तु अधिकाधिक आपराधिक मुकदमे तो मानो उनकी 'मैरिट लिस्ट' बन गये हैं। आज का समाज कितना असहाय और विवश है कि उसे क्रूरकर्मा आतंकवादियों को 'अतिवादी' जैसे दार्शनिकनुमा और महा-अपराधियों को 'बाहुबली' जैसे मनोहर विशेषणों से पुकारना पड़ रहा है!!

धनबली, पदबली और बाहुबली लोकतन्त्र को दोनों हाथों से लूट रहे हैं। लोकतन्त्र क्या है, उनका अभयारण्य बना हुआ है और वे उसमें स्वच्छन्दता से विचरते हैं। गाँव से लेकर देश को चलानेवाली लोकसभा तक उनका दबदबा है। प्रशासन, नियम, कानून उनके ठेंगे पर रहते हैं। लोकतन्त्र का असली 'लोक' दीन-हीन, असहाय है। नाम लोकतन्त्र का है किन्तु वस्तुत: उसकी बागडोर 'बलीतन्त्र' के हाथों में खेलती है। इसलिए आज लोकतन्त्र पर ही प्रश्नचिह्न लगने लगा है। ऐसे कुपोषित लोकतन्त्र से लम्बे जीवन की आशा कैसे की जा सकती है?

कुछ लोग कहते हैं कि संस्कारों की, आदर्शों की, मर्यादाओं की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमारा संविधान है, कानून है। उनके अनुसार लोग चलेंगे, व्यवस्थातन्त्र चलेगा, देश चलेगा, जो नहीं चलेगा वह दण्डित होगा। हम भूल जाते हैं कि 'कानून' तो एक जड़ तत्त्व है। संस्कारों, आदर्शों, मार्यादाओं के बिना वह निष्क्रिय है, असहाय है। संस्कारों और दृढ़ संकल्पों से ही उसमें चेतना आती है। जनचेतना के बिना कानून व्यर्थ है। धनबल, बाहुबल और पदबल के सामने वह बेचारा है। केवल कानूनी व्यक्ति भी 'रोबोट मानव' के समान है जब तक कि उसमें संस्कारों और संकल्पों का स्फुरण न हो। हमने संस्कारों और संकल्पों को, जो वैदिक-व्यवस्था में धर्म के अन्तर्गत समाहित थे, निरर्थक मान लिया है, यह नैतिक पतन का कारण है।

आइये, अब तुलना करते हैं लोकतन्त्र के शासक की और वैदिकव्यवस्था के शासक की। राजा या शासक कैसा होना चाहिये और उसे किन व्रतों अर्थात् कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिये, इसका सुन्दर चित्रण और चित्र वैदिक राज्यव्यवस्था में देखा जा सकता है। मनुस्मृति में एक सारगर्भित श्लोक आता है-

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत्।।
(९.३०३)

'राजा या शासक को इन्द्र, अर्क=सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्र, अग्नि और पृथ्वी के स्वाभाविक कार्यों को कर्त्तव्यरूप में पालन करने का व्रत लेना चाहिये। वे व्रत है १. **इन्द्रव्रत**- जिस प्रकार वर्षा का देवता (शक्ति) इन्द्र वर्षाकाल में भरपूर वर्षा करके धन-धान्य से सम्पन्न करता है, उसी प्रकार राजा प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करके उन्हें प्रसन्न रखे, यह राजा का इन्द्रव्रत है। २. **अर्कव्रत**- जिस प्रकार सूर्य बिना कष्ट पहुँचाये पदार्थों से रस ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा प्रजाओं से थोड़ा थोड़ा कर ग्रहण करे। ३. **वायुव्रत**- जिस प्रकार वायु प्राणियों में प्रविष्ट होकर सर्वत्र विचरण करता है, उसी प्रकार राजा दूतों के द्वारा प्रजाओं के सब दु:खों-सुखों को जाने। ४. **यमव्रत**- जिस प्रकार मृत्यु समय आने पर सबको वश में करती है, उसी प्रकार अपने-पराये से पक्षपातरहित होकर न्याय करे और अपराधियों को अवश्य दण्डित करे। ५. **वरुणवत**- जिस प्रकार जल अपनी तरंगों या भँवर से किसी को जकड़ लेता है, उसी प्रकार राजा अपराधियों और लोककण्टकों को कारावास या वश में रखे। ६. **चन्द्रव्रत**- जैसे चन्द्र के माधुर्य को देखकर लोग प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार राजा ऐसा हो कि प्रजाएँ उसको देखकर हर्ष का अनुभव करें। ७. **अग्निव्रत**- जिस प्रकार अग्नि अपवित्र वस्तुओं को भस्म कर देती है, उसी प्रकार राजा पापकर्मों और दुष्टों को भस्म करनेवाला हो। ८. **धराव्रत**- जिस प्रकार धरती प्राणियों को समानभाव से धारण करके समता से पालन करती है, उसी प्रकार राजा अपने राष्ट्र में समानतापूर्ण व्यवहार रखते हुए प्रजा का पालन-पोषण करे। यह राजा की संक्षिप्त एवं आदर्श आचारसंहिता थी।

आधुनिकमन्य लोग वर्तमान राज्यव्यवस्था में प्रचारित

'समाजवाद', 'समतावाद' आदि विचारधारा को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं जैसे वह वर्तमान राजनीति की अभूतपूर्व खोज हो या अद्‌भुत विशेषता हो। पाठकों को जानना चाहिये कि वैदिक राज्यव्यवस्था में प्रजारंजन, प्रजाहित, प्रजारक्षण, प्रजापालन ही राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था और समता का व्यवहार उसका आदर्श था। राजा के कर्त्तव्यों में 'धराव्रत' समता के व्यवहार का ही कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त, राज्याभिषेक के समय राजा सार्वजनिक रूप से समाजहित अर्थात् प्रजाहित की और समानता के व्यवहार की प्रतिज्ञाएँ भी करता था। वैदिककाल में राजा बनने के लिये राजसूय यज्ञ और सम्राट् अर्थात् चक्रवर्ती राजा बनने के लिये अश्वमेध यज्ञ करना पड़ता था। उस चक्रवर्ती सम्राट् को भी ये प्रतिज्ञाएँ करनी होती थीं। वैदिककाल के विख्यात चक्रवर्ती सम्राट् पृथु के वृत्तान्त में उपर्युक्त नियम का उल्लेख मिलता है। महाभारत (शान्ति. ५९, ९८-१२८) में आता है कि सम्राट् बनते समय अश्वमेध यज्ञ के अन्तर्गत ऋत्विज् ऋषियों ने सम्राट् पृथु से निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ करायी थीं-

१. मैं मनसा-वाचा-कर्मणा सत्यप्रतिज्ञा करता हूँ कि निर्धारित धर्म (राज्य के संविधान) का निर्भयतापूर्वक, शंकारहित होकर पालन करुँगा।

२. प्रिय-अप्रिय की भावना को छोड़कर सभी प्रजाजनों के साथ समानता का व्यवहार करूँगा।

३. जो कोई अपने धर्मों-कर्त्तव्यों से विचलित होगा उसको, काम, क्रोध, लोभ, मान-अहंकार की भावना को दूर रखकर, स्वीकृत धर्म (संविधान) के अनुसार दण्ड दूँगा।

४. प्रजाजन को 'भौम-ब्रह्म' मानकर उसका पालन-रक्षण करूँगा अर्थात जिस प्रकार व्यक्ति ईश्वर के प्रति श्रद्धा, सम्मान, प्रेम भाव रखता है उसी प्रकार प्रजा को आदर, प्रेम दूँगा और उसका पालन करुँगा।

ध्यान दीजिये, वैदिक राजा के लिये प्रजा केवल पुत्रवत् ही नहीं, ब्रह्मवत् आदरणीय भी होती थी। इससे उदात्त आदर्श और कर्त्तव्य आज तक किसी भी राजनीति में स्थापित नहीं हुए हैं। आज का तन्त्र आन्तरिक आदर्शों की चर्चा नहीं करता, क्योंकि उन आदर्शों को निभाना 'लोहे के चने चबाना' है। वैदिक राजा इन कठोर आदर्शों का पालन करते थे उनके लिये राजगद्दी ठाठ-बाट का साधन और पीढ़ियों के लिये धनसंचय का माध्यम नहीं थी। उनका राजगद्दी के प्रति नहीं, कर्त्तव्य के प्रति प्रेम था। वे तानाशाह या लालफीताशाह की तरह मनमाना शासन नहीं करते थे अपितु प्रजा का पुत्रवत् पालन करते थे। वाल्मीकीय रामायण में महाराजा दशरथ के आदर्श शासन का वर्णन है। अपनी राजसभा के समक्ष वे अपने शासन की पद्धति की एक विशेषता का उल्लेख बड़े गर्व के साथ करते हुए कहते हैं-

विदितं भवतामेतद् यथा मे राज्यमुत्तमम्।
पूर्वकैः मम राजेन्द्रैः सुतवत् परिपालितम्।।

(अयो. २.४)

अर्थात् -'आप सभासदों को यह विदित ही है कि मेरा शासन उत्तम कहाता है। उसका कारण यह है कि मैंने और मुझसे पूर्व के अयोध्या के सभी नरेशों ने अपने राष्ट्र की प्रजा का पालन पुत्र के समान किया। वैदिक राज्यव्यवस्था में इस आदर्श के साथ प्रजा का पालन-पोषण एवं रक्षण किया जाता था। वैदिक शास्त्रों में यहाँ तक निर्देश है कि जिस राजा के राज्य में अत्याचारियों, अपराधियों, अन्यायकर्त्ताओं, अपहरणकर्त्ताओं, चोर-डाकुओं आदि द्वारा प्रजा पीड़ित रहती हो, उस राजा को प्रजा से कर ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। कितने उच्च मानक थे वैदिक शासन तन्त्र के!

क्रमशः...

-डॉ. सुरेन्द्र कुमार

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है।

(सत्यार्थ प्रकाश सम्मुलास ३)

प्रवचनमाला-८१

अग्नि सूक्त-०१
भूमिका

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रहा है। गत अंक में मृत्यु सूक्त का अन्तिम व्याख्यान प्रकाशित हुआ। आप सभी ने उक्त सूक्त को उत्सुकतापूर्वक पढ़ा। आप सबकी इस वेद-जिज्ञासा को ध्यान में रखकर शीघ्र ही यह पुस्तक रूप में भी प्रकाशित कर दिया जायेगा। इस अंक (मार्च प्रथम) से ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'अग्निसूक्त' की व्याख्यान माला प्रारम्भ की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर जी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा जी ही कर रही हैं। -सम्पादक

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।

हम इस वेद-चर्चा में ऋग्वेद के पहले सूक्त के प्रारम्भिक मन्त्रों की बात कर रहे हैं। हमने पिछली चर्चा में देखा था कि मन्त्रों को समझने के लिये, जानने के लिये जिन बातों का हमें पता होना चाहिये, उनमें देखा कि मन्त्रार्थ के लिये ऋषि, देवता, छन्द, स्वर को देखते हैं। हमने जाना था कि ऋषि वे लोग होते हैं, जिन्होंने इन मन्त्रों का अर्थ देखा है, जाना है और उस अर्थ को जानकर के उन्होंने उसे दूसरे आनेवाले लोगों को बताया है। यह जो जानकारी है, ऋषियों ने वेद-मन्त्रों का साक्षात् करके इस जानकारी को दिया। दूसरी बात हमने देखी थी कि क्या दिया? कौन सी जानकारी दी? उसका नाम देवता है, अर्थात् मन्त्र में किस विषय को समझाया है, कौन सी बात बताई है, किसकी चर्चा की है, उसको बतानेवाला जो शब्द है, उसे हमने 'देवता' कहा और जिसमें उसकी रचना हुई है, उन अक्षरों का जो क्रम है, उसको हम 'छन्द' कहते हैं। वे लोक में भी होते हैं जिनमें कविता की जाती है और वेद में भी होते हैं। उनके नाम अलग-अलग होते हैं। ऋग्वेद में आठ छन्द प्रयोग में आते हैं उनको हम गायत्री, उष्णिक, पङ्क्ति, अनुष्टुप, त्रिष्टुप, बृहती, विराट्, जगती आदि के नाम से जानते हैं। प्रत्येक छन्द में कितने अक्षर होते हैं, किसमें कितने पाद होते हैं, किसी में एक, दो, चार या अधिक। किसी में आठ, छः, चौदह, बारह या चौबीस अक्षर निर्धारित हैं। उसी के हिसाब से हम उसे गाते हैं। जिस विषय पर हम अब चर्चा कर रहे हैं, वह है स्वर। स्वर संगीत में भी होते हैं और स्वर उच्चारण में भी होते हैं। सामान्य भाषा में भी होते हैं। यहाँ दो तरह के स्वरों की बात है- एक तो है कि हम किसी अक्षर को लम्बे समय तक खींचकर बोलते हैं और किसी अक्षर को कम समय में बोलते हैं। जो समय के हिसाब से बोलते हैं उसको हमने नाम दिया था-ह्रस्व, दीर्घ व प्लुत। ह्रस्व मतलब कम समय में बोला जानेवाला, दीर्घ मतलब दुगुने समय में बोला जानेवाला, प्लुत मतलब तिगुने या ज्यादा समय में बोला जानेवाला। उच्चारण का एक विभाजन यह था। दूसरा था-ऊँचे स्वर से बोला जानेवाला अर्थात् जिसमें शक्ति कम और अधिक लगती है, वह दूसरा विभाजन है। जिसमें अधिक शक्ति लगाकर बोला जाता है, हमारा स्वर ऊँचा हो जाता है। वहाँ उसकी गुणवत्ता उस तरह की है जिससे हम निर्णय करते हैं कि यह उदात्त है, इसलिए ऊँचा स्वर अनुदात्त है, यह नीचा है और यह स्वरित है, यह मध्यम है। अब इसको लिखने का तो कोई प्रकार सामान्य भाषा में प्रसिद्ध नहीं है। यह वेद में मिलता है या वैदिक साहित्य के ग्रन्थों में मिलता है। जहाँ पर अक्षरों के नीचे रेखायें पड़ी रहती हैं या अक्षरों के ऊपर पड़ी रहती हैं। वहाँ यह माना गया है कि जो उदात्त है उस पर कोई रेखा नहीं है, किसी के नीचे रेखा है उसको अनुदात्त कहते हैं, उसका मतलब होता है नीचे स्वर से बोला जानेवाला और जिसके ऊपर खड़ी रेखा होती है उसे स्वरित कहते हैं, वह मध्यम स्वर से बोला जाता है। यह वाक्य में, मन्त्र में, पद्य में है तो इसको जानने से अर्थ को

जानने में सुविधा होती है, क्योंकि ह्रस्व, दीर्घ आदि भी अर्थ को नियन्त्रित करते हैं और उदात्त, अनुदात्त आदि भी अर्थ को नियन्त्रित करते हैं। इसलिये समस्त वेद के अर्थों को भली प्रकार तो वही व्यक्ति जान और समझ सकता है, जिसके अन्दर दोनों स्वरज्ञान की योग्यतायें हैं।

इसलिये जब अर्थ करते हैं तो कई बार हमें लगता है कि शब्द का अर्थ तो यह है, अलग क्यों किया जा रहा है। तब पता लगता है कि यही शब्द आदि में उदात्त हो तो इसका अर्थ अलग होता है, अन्त में उदात्त हो तो अलग अर्थ होता है। यदि अनुदात्त है तो कौनसा लिङ्ग होता है, उदात्त है तो कौन सा होता है, यह एक शास्त्रीय परम्परा है। इसलिये अर्थ पर विचार करते समय जिसकी जितनी अधिक योग्यता होती है, अर्थ का विवेचन करने में, निर्णय करने में, विचार करने में वह व्यक्ति उतना ही सफल होता है।

हम अग्निसूक्त के मन्त्रों का विचार करने जा रहे हैं और यह 'अग्निमीळे' बहुत प्रसिद्ध मन्त्र है, इसका ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र है, इसका देवता अग्नि है, इसका छन्द गायत्री है और इसका स्वर षड्जः है। हम बहुत सारे मन्त्रों के छन्द जानते हैं और जो सबसे ज्यादा प्रसिद्ध छन्द है, जिसे गायत्री मन्त्र के नाम से हम जानते हैं, उसकी रचना क्योंकि गायत्री छन्द में है इसलिए उसका नाम गायत्री है। वैसे गायत्री छन्द वाले मन्त्र हजारों हैं, क्योंकि जितने भी मन्त्र गायत्री छन्द में बने हैं, वे सब गायत्री हैं। किन्तु ज्ञान की उपासना में इस मन्त्र को बहुत महत्त्व दिया गया है इसलिए इसके गायत्री मन्त्र नाम के साथ और बहुत सारे नाम भी हैं। देवता के कारण से इसे सविता मन्त्र भी कहते हैं, सावित्री इसका देवता है, क्योंकि सविता सूर्य को भी कहते हैं, सविता उत्पत्ति करने वाले को भी कहते हैं। उत्पत्ति के कारण को सविता कहते हैं इस दृष्टि से परमेश्वर का नाम भी सविता है। इस मन्त्र का देवता सविता होने से इसे सावित्री मन्त्र कहते हैं। इसके भी आगे, क्योंकि इसे ज्ञान का मन्त्र, गुरु के द्वारा जो पहले दिन पढ़ाया जाता है इसीलिए इसे गुरुमन्त्र भी कहते हैं। गुरु के द्वारा जो मन्त्र दिया गया, वह गुरुमन्त्र है।

वेद का हमारे जीवन में वही महत्त्व है जो जीवन में प्रकाश का है। जैसे प्रकाश के बिना सब संसार अन्धकारमय हो जाता है, उसी तरह ज्ञान-रूप प्रकाश के द्वारा, यह संसार प्रकाशित होता है और प्रकाश में जैसे हम व्यवहार करने में सफल होते हैं, प्रकाश में व्यवहार करना हमारे लिये सहज सरल होता है, वैसे ही वेद के ज्ञान में, प्रकाश में काम करने से कार्य आसान होता है। मनु महाराज कहते हैं-

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षु सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः।।

चाहे पितर हों, चाहे देव हों, चाहे मनुष्य हों, तीन लोग हैं जो ज्ञान के उपासक हैं, ज्ञान का उपयोग करनेवाले हैं। जो ज्ञान का उपयोग नहीं करते, उनको तो असुर कहा गया है। वे ज्ञान के विरुद्ध काम करते हैं, वे अपने संवेगों से, अपनी इच्छाओं से बाधित हो अपनी इच्छाओं के अनुसार चलते हैं, उसी को वे अच्छा मानते हैं इसलिए उनका नाम यहाँ नहीं है। बाकि तीन बचते हैं-पितर, देव और मनुष्य। जो मनुष्यों में बड़े होते हैं, बुजुर्ग हैं, अनुभवी हैं, जानकार हैं, उनको हम पितर कह देते हैं। और उनमें भी जो ऊँचे होते हैं, धर्मात्मा होते हैं, सबके लिये प्रेरणा के स्रोत होते हैं, उन्हें आप्त कहते हैं। तो हमारे यहाँ तीन तरह के लोग हैं समाज में, पितृ-देव-मनुष्य। जो जनसामान्य होता है वह मनुष्य कहलाता है। जो कुछ बड़े हैं, अनुभवी हैं उनको पितर कहते हैं और उनमें भी जो महान् होते हैं, ज्ञानवान् होते हैं, उनको देव कहते हैं। मनु महाराज कहते हैं कि जैसे किसी मनुष्य के पास आँख का होना महत्त्वपूर्ण होता है, आँखवाले के लिये जैसे आँख मूल्यवान् होती है, तो कहा कि पितरों के लिये, देवों के लिये और मनुष्यों के लिये वेद सनातन चक्षु हैं अर्थात् सदा से था, है और रहेगा।

हम समझ सकते हैं कि हम तो आज वेद पढ़ते-पढ़ाते हैं नहीं, हमें कोई आवश्यकता नहीं। यह ऐसा है कि कोई कहे मैं स्कूल में गया नहीं हूँ, इसलिए स्कूल बेकार है। लेकिन स्कूल का काम तो उसे किसी न किसी माध्यम से करना ही पड़ा है। वैसे ही क्रम तो यही है जानने का, आधार तो यही है, आपने उसको कब और कैसे जाना यह अलग चीज है। श्लोक कहता है कि ज्ञानरूपी आँख के बिना संसार का व्यवहार सम्भव नहीं है, चाहे फिर वे पितर हों, चाहे देव हों, चाहे मनुष्य हों। यदि आप उसको बिना किसी की सहायता के जानना चाहते हैं तो जैसे सूर्य

के अभाव में केवल आँख से कुछ देखना चाहें, जानना चाहें तो वह आँख होने पर भी कुछ भी देखने में समर्थ नहीं होगा। उसकी आँख का सामर्थ्य तभी काम आयेगा जबकि उसे वेदज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश प्राप्त होगा। इसलिए यहाँ सनातन चक्षु कहा है। उसको कोई स्वयं न जान सकता है न स्वयं कोई बना सकता है। जैसे आँख से हम देखते तो हैं, पर सूर्य के प्रकाश में ही देख पाते हैं। न तो आँख हमने बनाई, न सूर्य का प्रकश हमने बनाया, हम केवल उसका उपयोग करते हैं। इस दृष्टि से यहाँ बताया गया कि वेद हमारे सनातन चक्षु हैं, उनके द्वारा हमें हमारी बुद्धि से दिखाई देता है। हम उसका यदि उपयोग करते हैं तो हमारे जीवन के व्यवहारों को हम अच्छे रूप में कर सकते हैं।

इसके महत्त्व के लिये और भी बहुत सारे श्लोक मनु महाराज ने दिये हैं, किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात जो उन्होंने कही है कि जैसे आँख है वैसे ही वेद है। इसलिये हमारे ऋषियों ने सदा ही हमको वेद से जोड़कर रखने का यत्न किया है। स्वामी दयानन्द जी महाराज ने जहाँ वेद को सब सत्यविद्याओं का पुस्तक कहा, वहाँ उसके साथ उन्होंने वेद के पढ़ने-पढ़ाने को सभी आर्यों के लिये, श्रेष्ठों के लिये, मनुष्यों के लिये परमधर्म कहा है अर्थात् ऐसा कर्त्तव्य जिसको टाला नहीं जा सकता, जिसको करना ही चाहिये। वह कहते हैं-वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है और वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है। तो यह पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना यह सामान्य लोगों तक पहुँचने का उपाय है। जो स्वयं पढ़ भी नहीं सकते, उनको सुनाया जा सकता है। जो पढ़ सकते हैं उनको पढ़ाया जा सकता है। इस दृष्टि से वेद को हमारे जीवन से निरन्तर जोड़ा गया है, क्योंकि ज्ञान के बिना हमारा कोई भी व्यवहार सफल नहीं हो सकता। इसलिये **यदि हमें वेद का ज्ञान प्राप्त है तो हमारा व्यवहार सत्य होगा, उचित होगा, सम्पूर्णता के साथ होगा और इस व्यवहार से हमें फल की प्राप्ति होगी, जिसको हमने विज्ञान कहा या जिसको हमने परिणाम कहा।** वह जो ज्ञान है वह इसके द्वारा ही सम्भव है। इस तरह से वेद को जानने और समझने का हम यत्न करेंगे तो निश्चित ही हम सफल हो सकते हैं।

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ **पृष्ठ :** २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा **पृष्ठ :** ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर **पृष्ठ :** ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग **पृष्ठ :** २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बाहर का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी **पृष्ठ :** १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

ज्ञानवीर प्राणवीर पं. लेखराम जी- महर्षि दयानन्द की शिष्य-परम्परा में वैसे तो सबसे पहले बलिवेदी पर प्राण चढ़ाने का गौरव वीरवर चिरञ्जीलालजी को प्राप्त है, परन्तु आर्यसमाज के इतिहास में महर्षि जी के बलिदान के पश्चात् सबसे बड़ा बलिदान ६ मार्च सन् १८९७ ई. को लाहौर में ज्ञानवीर प्राणवीर पं. लेखरामजी को देने का सौभाग्य प्राप्त है। आपने अपने मात्र सोलह वर्ष के सार्वजनिक जीवन में पग-पग पर नया इतिहास रचा ओर उनके देह-त्याग के साथ ही उनके इतिहास रचने की प्रक्रिया नहीं रुकी। वे मरकर अमर हो गये, यह तो सत्य है, तथ्य है, परन्तु बलिदानी लेखराम आज भी हमारे उत्साहवर्द्धन के लिये नयी-नयी उपलब्धियाँ प्राप्त करके हमें सत्प्रेरणायें दे रहा है। आर्यसमाज के क्षेत्र में जो नये-नये ऊहावान् तथा ऊर्जावान युवक आगे आ रहे हैं, उन्हें अपने सब पूर्वजों की उपलब्धियों का लेखा-जोखा करते हुये आर्यसमाज का सिर ऊँचा करना चाहिये।

१. परोपकारी द्वारा मैं नई पीढ़ी से यह आशा करता हूँ कि वे इसी छः मार्च से आर्यमात्र के दिल और दिमाग में यह बिठा दें कि पं. लेखराम जी की दीक्षा-भूमि अजमेर है। मैं ईंट-पत्थर के स्मारक में तो विश्वास नहीं करता, परन्तु अजमेर में न तो हम ऋषि का कोई जीवन्त स्मारक बना सके और न ही पं. लेखराम जी का। प्रतिदिन तो छोड़िये प्रति सप्ताह सत्संगियों की भीड़ को खींचकर भी ऐसा जीवन्त स्मारक बन सकता है।

२. श्रीयुत विरजानन्द जी ने मुझसे पूछा था कि ऋषि जी ने किसको कहा था ईंट-पत्थर का मेरा स्मारक न बनाना। यही तो पत्थर-पूजा की नींव है। मैंने कहा परोपकारिणी सभा के प्रथम महापण्डित इतिहासकार कविराजा श्यामलदास से ऋषि ने ऐसा कहा था। श्री महाराणा सज्जनसिंह की जीवनी में भी यह घटना दी गई थी।

३. अमेरिका के गवेषक पं. लेखराम जी लिखित 'पुनर्जन्म मीमांसा' पुस्तक को अपने विषय का पहला और सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ मानते हैं। आर्यसमाज ने मेरे बताने-सुझाने पर भी इस तथ्य को मुखरित नहीं किया। परोपकारिणी सभा ने अब तो नई-नई टिप्पणियों सहित इसको पुनः प्रकाशित करवा दिया है। इसे अलग से लाखों की संख्या में छपवाकर प्रचारित करना चाहिये।

४. अमेरिका के गवेषक ईसाई-मत की समीक्षा पर लिखी गई पण्डित जी की पुस्तक 'क्रिश्चियन मत दर्पण' को अपने विषय की प्रथम पठनीय पुस्तक मानते हैं। इस्लाम के इस युग के सबसे बड़े भारतीय लीडर सर सैयद अहमद ने मरियम के 'कुमारी माँ' होने का विवेचन करते हुए पं. लेखराम जी के इसी ग्रन्थ का बिना नाम लिये सहारा लिया। अजमेर से छपे संस्करण में पाद टिप्पणी में मैंने यह प्रमाण दिया है। आर्यसमाजी अपना डंका बजाना ही भूल गये।

५. आज डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी की 'मनुस्मृति' को कलङ्कमुक्त करने की उपलब्धि पर हम घर बैठे-बैठे ही गौरव करते हैं। किसी को आगे बढ़कर इस अभियान का इतिहास भी लिखना चाहिये। महर्षि दयानन्द जी के पश्चात् इस पर एक उत्तम संस्करण तैयार करने का सङ्कल्प पं. लेखराम जी ने ही सबसे पहले किया था। कुछ ही मास में उनका बलिदान हो गया। फिर इस दिशा में करणीय कार्य कुछ किया तो उपाध्याय जी ने। पं. लेखरामजी ने जो दिशा दी वह 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' से लेकर हमारे युवकों को प्रचारित करनी चाहिये। यह कार्य रुकना नहीं चाहिये। मैंने तो डॉ. सुरेन्द्र जी के लिये एक ऐसा ही कार्य सोच रखा है। आर्यो! बोलो- ''हम रुकना-झुकना क्या जानें।''

६. मुहम्मदिया पॉकेट के विद्वान् इस्लामी लेखक ने पं. लेखराम जी के लिये ''कोहे वकार'' (गौरव गिरि) विशेषण का प्रयोग किया है। मैंने श्री शरर जी आदि कुछ विद्वानों के लिये इस विशेषण का प्रयोग किया है? अपने कहा, ''मैं तो पहली बार आप से ही इसका प्रयोग सुन रहा हूँ।'' मैं तो इस खोज में भी लगा रहा। पता लगा कि मौलाना हाली ने सर सैयद के लिये इस विशेषण का प्रयोग अवश्य किया है, तथापि पं. लेखराम जी के लिये

इस विशेषण का प्रयोग करने से आर्य लोग सकुचाते क्यों हैं? हर कोई अपने आपको योगाचार्य और न जाने किस-किस विशेषण से प्रचारित कर रहा है। पण्डित जी के लिये यह अत्यन्त उपयुक्त विशेषण है।

७. पं. भगवद्दत्त जी ने एक पठनीय और स्मरणीय वाक्य लिखा है। महर्षि से प्रेरणा करके पहली बार पं. लेखराम जी ने ही इस्लाम को पीछे हटने पर विवश किया।

८. आज इस्लाम में एक नहीं कई बड़े-बड़े मौलाना रसूल के चमत्कारों और भविष्यवाणियों को एक मिथ्या प्रचार मानते हैं। कुरान में पैग़म्बर के किसी चमत्कार का उल्लेख नहीं, मित्रो! यही सत्य कथन तो पं. लेखराम जी के बलिदान का कारण बना था। आज मुसलमान इस सच्चाई के ध्वजवाहक बनकर आगे आ रहे हैं तो उनका स्वागत करो। यह पण्डित लेखराम जी के मिशन का कार्य है।

९. जब घर से ऋषि-जीवन के लिये कोई भी निकलने का साहस न कर सका केवल ''मैं लिखूँगा, मैं यह कार्य करूँगा'' बातें ही बातें बनाते रहे तब धुन के धनी पं. लेखराम जी ने ही यह कार्य करके दिखाया।

१०. एक उपहासकार ने यह विषैला प्रचार आरम्भ किया कि पं. लेखराम को फ़ारसी भाषा का स्वल्प सा-साधारण ज्ञान था। आर्यो, यह विशुद्ध गप्प है। पण्डितजी फ़ारसी, उर्दू के गद्य-पद्य के सिद्धहस्त लेखक थे। झूठ फैलाने से क्या मिलेगा?

११. हिन्दी साहित्य में पीएच.डी. के लिये साक्षात्कार को विषय बनाकर शोध करनेवाले ने मुझसे पूछा, ''हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम किस पत्रकार ने साक्षात्कार लिया?'' मैंने उसे सप्रमाण बताया कि अजमेर में पं. लेखराम जी ने ऋषि से ऐसा पहला साक्षात्कार लिया था। उसके शोधग्रन्थ में यह तथ्य आ चुका है। इसके लिये पाठकों को बधाई हो। इसका प्रचार कौन करेगा?

नया जाल लाया पुराना शिकारी- श्री भावेश मेरजा ने गुजरात से यह सूचना दी है कि भोपाल के श्री आदित्यपाल सिंह अज्ञात जीवनी के नाम से चर्चित पुराण को 'दयानन्द दिवाकर' नाम से फिर से प्रकाशित कर रहे हैं। मैंने यह बात सुनकर कहा, न जाने इस पुराण के प्रकाशन की अर्थव्यवस्था कौन कर रहा है। इस पुराण के प्रचार से उनको इतना लगाव क्यों है? ऋषि दयानन्द वेद से तो बड़े नहीं हैं। इस व्यक्ति ने अपने गुरु के साथ मिलकर वेद की निन्दा करने का अति घृणित कार्य किया। इसे ऋषि की जन्मतिथि से क्या लेना-देना? इसने नास्तिक जैनी लाला जीयालाल से भी घटिया काम किया। उसका अन्धानुकरण करते हुये ऋषि की कल्पित जन्मतिथि व जन्मवर्ष गढ़कर दुष्प्रचार किया। जीयालाल ने भी मनगढ़न्त जन्मपत्री बनाई थी। उसने ऋषि की प्रशंसा भी की। ऋषि की महिमा को मानना पड़ा। उसने ऋषि की निन्दा जो की सो की, परन्तु गुणगान भी खूब करना पड़ा।

'दयानन्द दिवाकर' का प्रकाशन करके यह आर्यसमाज में ऋषि-जीवन की आड़ में अपना प्रचार व प्रदूषण फैलाना चाहता है। इसे मुँह लगाकर इसके प्रचार का मैं हथियार क्यों बनूँ। इससे बड़ी और गप्प क्या हो सकती है कि ऋषि अपनी अज्ञात जीवनी को चार ब्रह्म- समाजियों को लिखावें? गुप्त सामग्री! वह भी एक नहीं चार को और चारों का ही ऋषि-मिशन से कोई लेना-देना नहीं था। ऋषि ने मेरठ में, पंजाब में अन्यत्र भी आर्यसमाज के भविष्य के बारे आशावान होकर बहुत कुछ कहा और यह सामग्री सौंपी किसको? इसका कहीं संकेत तक न दिया। पाण्डुलिपि तक न दिखाई गई। बंगाल में किसी ने कुछ सेवा की तो ऋषि के मुख से उसकी स्तुति करवाई। साधु ने अमृतसर में पत्थर-वर्षा करनेवालों को तो प्रसाद दिया। भोजन करके वे किसी के भाट न बने। यह पुराण छपने दो, यदि कुछ लिखना भी पड़ा तो मित्रों से विचारकर बहुत संक्षेप से ही कुछ लिखा जावेगा।

एकेश्वरवाद से इतनी चिढ़ क्यों?- संसार में ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास न करनेवालों की संख्या करोड़ों में है और ईश्वर की सत्ता में विश्वास करनेवालों की संख्या नास्तिकों से भी कहीं अधिक है। ईश्वर की सत्ता में विश्वास न करनेवालों में स्टालिन के युग तक संसारभर में साम्यवादियों की भारी संख्या थी। सन् १९४८ में मैंने कॉलेज में जब प्रवेश पाया तो उन दिनों स्वयं को साम्यवादी, प्रगतिशील तथा नास्तिक कहना एक वैचारिक फ़ैशन था। मैं सिख

नेशनल कॉलेज का विद्यार्थी था। आश्चर्य की बात तब यह थी कि केश-दाढ़ी रखनेवाले सिख छात्र बहुत बड़ी संख्या में स्वयं को साम्यवादी कहने में गर्व अनुभव करते थे। श्री गुरुनानक देव जी के 'एक ओंकार' के नाद का उन पर कतई प्रभाव नहीं था। जवाहरलाल नेहरू भी घोर नास्तिक थे। तब पं. नेहरू की नास्तिकता का भी युवा वर्ग पर प्रभाव था। स्टालिन के मरते ही नास्तिकता की साम्यवादी लहर को करारा धक्का लगा।

अपने आप को नास्तिक न मानते हुए पूजा-पाठ का कर्मकाण्ड करनेवाले करोड़ों हिन्दू एक सर्वज्ञ और सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते। वेद ईश्वर को एक ही मानता है जो सर्वव्यापक है, इसलिये सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सृष्टि का कर्त्ता, नियन्ता, कण-कण में, हर जन में, हर तन में, हर मन में और प्रत्येक दिशा में व्यापक है। गुरुनानक आदि कई सन्त महात्माओं ने भी ईश्वर को एक तथा जल-स्थल में व्यापक माना है।

हिन्दुत्ववादी वक्ता-प्रवक्ता टी.वी. में, रैलियों में, प्रदर्शनों में जय श्रीराम का अभियान चलाते हुए आजकल श्री रामचन्द्र जी महाराज को रोम-रोम में व्यापक मान रहे हैं। श्री पात्रा जैसे योग्य भाजपाई के मुख से मैं यह सुनकर दंग रह गया कि राम रोम-रोम में व्यापक है। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम को कहीं भी रोम-रोम में व्यापक नहीं कहा गया। यदि ऐसा ही है तो सीता जी के अपहरण पर रामचन्द्र जी को दु:खी और व्याकुल होकर उनकी खोज करने की क्या आवश्यकता थी। हनुमान लङ्का पहुँचकर भी माता सीता जी की खोज में क्यों भटकता रहा। राम कण-कण में हर मन में व्यापक थे तो वह सीताजी और हनुमान के मन में भी तो व्यापक थे। झट से हनुमान को माता सीता का पता क्यों न चल गया? फिर वाल्मीकि रामायण में और रामचरितमानस में माता सीता, श्री राम और लक्ष्मण द्वारा यज्ञ, सन्ध्या नियमपूर्वक करने का जो उल्लेख है, वे किसकी उपासना करते थे? राम-मन्दिर लुटेरों ने ध्वस्त कर दिया। सैंकड़ों वर्ष उस पर उनका अधिकार रहा। रोम-रोम में व्यापक राम अपना मन्दिर क्यों न बचा पाये?

हिन्दुओं में भगवानों की मण्डी है। प्रत्येक प्रदेश में [केवल भारत में ही] हिन्दुओं के रब और रबनियों के बड़े-बड़े विशाल मन्दिर हैं। हिन्दू घट रहे हैं। भगवान् बढ़ रहे हैं। लव-जिहाद की मार अलग है। आस्तिकवाद का जो स्वरूप वेद, उपनिषद्, दर्शनों में है, ऐसा वैज्ञानिक स्वरूप विश्व में और कहाँ है? ईश्वर एक है, दो नहीं, तीन नहीं, चार नहीं, पाँच नहीं, छ: नहीं, सात नहीं, आठ नहीं और दस नहीं। न उसका कोई अंश है और न वंश है। यह एक वेद-मन्त्र का आशय है।

मोदी जी ने योगदिवस की लहर चलाई। इनकी पार्टी के कन्याकुमारी के विवेकानन्द शिलास्मारक में प्रतिमारहित योग-मन्दिर है। न जाने इनका वह योगाभ्यास छूटकर फिर पाषाण-पूजा की लहर कैसे चल पड़ी। श्रीकृष्ण की मैक्समूलर ने मट्टी कूट दी। ये लोग बोले नहीं। हिन्दुओं को एकेश्वरवादी बनाना अति कठिन दिखता है। ये करोड़ों की संख्या में काशी, अयोध्या और मथुरा आदि में ही विधर्मी बन गये। अदम्य उत्साह से श्रीराम के नामलेवा कुछ युवक आस्तिकता का डंका बजाते हुये धर्म-रक्षा, देश-रक्षा करें। वाल्मीकि रामायण के सबल प्रमाणों से श्रीराम को अज्ञानियों के चुंगल से छुड़ाया, बचाया जावे।

आर्यसमाज के लिये एक आनन्ददायक सूचना समाचार- मैं अपने सब पूर्वजों तथा परोपकारी के प्रेमी पाठकों के प्रति कृतज्ञता तथा आभार प्रकट करता हुआ ऋषिभक्तों को एक शुभ समाचार देता हूँ। आज चार फ़रवरी के दिन दोपहर के डेढ़ बजे चलभाष पर एक मुसलमान सुयोग्य सज्जन श्रीमान् नौशाद आलम ने मुझसे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक कुछ संवाद किया। वह एक प्रतिष्ठित गवेषक-लेखक हैं। आर्यसमाज के उर्दू साहित्य के लिये मेरी खोज और मेरा अनुवाद-कार्य आदि सब कुछ उनकी परियोजना का विषय है। वह मार्च मास में मेरे पास आ रहे हैं। मेरे ऐसे सब ग्रन्थ, पुस्तकें व लघु पुस्तकें जो मैंने उर्दू से अनूदित व सम्पादित की हैं-उनको वह संग्रहीत करेंगे। इस सम्बन्ध में जो कुछ पूछना होगा, पूछेंगे।

यह मेरे लिये भी उतने ही गौरव का समाचार है जितना परोपकारी परिवार के लिये। यह मेरा मान-सम्मान

नहीं है, यह मेरे पूर्वजों की उपलब्धि है, जिन्होंने एक छोटे से ग्रामीण नादान बालक को इस योग्य बना दिया कि आर्यसमाज के १४६ वर्ष के इतिहास में एक देशभक्त मुसलमान द्वारा सम्पादित एक विशाल आर्यसामाजिक ग्रन्थ तैयार करके पण्डित लेखराम की इस चरणधूलि को सादर समर्पित किया गया है। डॉ. अलिफ़ नाज़िम द्वारा सम्पादित यह ग्रन्थ जब छपकर आया तब पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, श्रद्धेय उपाध्याय जी, पं. त्रिलोकचन्द्र जी और पं. शान्तिप्रकाश जी होते तो उनको आर्यसमाज की इस उपलब्धि पर कितना गौरव होता। यह उन्हीं की तपस्या का फल मानना चाहिये।

पाठकवृन्द! आज जब डॉ. नौशाद आलम जी का चलभाष मुझे मिला मैं तब डाकघर में था। उनके विचार-उद्‌गार सुनते ही सात भाषाओं के आर्यविद्वान्, मिशनरी और पत्रकार पूज्यपाद पं. त्रिलोकचन्द्र शास्त्री जी की मोहिनीमूर्त मुस्कान बिखेरती हुई मेरे नयनों के सामने घूमने लग गई। वह दिन और वह घड़ी याद आ गई जब आपने दबाव देकर मुझे प्रेरणा दी कि मिर्ज़ाई पत्रिका 'बदर' के आर्यसमाज पर वार-प्रहार का उत्तर आप ही को अब देना है। हम कब तक यह कार्य करेंगे। आप अब समर्थ हैं, इस योग्य हैं कि विरोधियों की बोलती बन्द करें। मैं किस-किस का नाम गिनाऊँ। मुझे अनेक आर्यविद्वानों ने ऋणी कर दिया।

जीवन की साँझ में मैं नई पीढ़ी के आर्यवीरों से यही माँग करता हूँ। भावभरित हृदय से इस विषय में एक जानकारी देकर आगे कुछ लिखूँगा। इन दिनों परोपकारी और मासिक वेदप्रकाश में आर्यसमाज के अनूदित साहित्य पर मैंने कुछ लिखते हुये अपनी सेवाओं की भी कुछ झाँकी दी। प्रतीत होता है यहीं से उनके मन में भी यह पक्का विचार आया। आर्यो! प्रचार अब संगठन नहीं करता। आर्यसमाज का डंका परोपकारी बजाता है। 'वेदप्रकाश' मासिक और उस संस्थान की महिमा का भी मूल्याङ्कन कोई करे। उस विद्वान् मुसलमान साहित्यकार ने यह विषय उठा दिया है तो मैं बात दूँ कि आर्यसमाज के इतिहास में सर्वाधिक अनुवाद कार्य करने का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त है और वर्तमान में इस देश में उर्दू की ऐसी सेवा मुझसे बढ़कर कोई और न कर सका। अनुवाद पर पुरस्कारों के लिये नाम माँगे गये थे, परन्तु मैंने अपना नाम आगे करना ठीक न समझा। आर्यो! फिर कहता हूँ यह किसी व्यक्ति की उपलब्धि नहीं, यह तो ''लहलहाती है खेती दयानन्द की।''

पं. रतिराम जी परिवार का तरङ्गित हृदय- इसी प्रकार का एक उत्साहवर्द्धक एक और समाचार आर्यमात्र के लिये मेरे पास है। कुछ गिने-चुने आर्यपुरुषों का यह पता है कि देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी की स्मृति में आर्यसमाज नया बांस दिल्ली की शताब्दी पर मैंने आर्यसमाज के अब तक के अत्यन्त श्रेष्ठ ग्रन्थों में से एक 'अनादि नाद' उन्हें समर्पित किया था। भाई जी की एक ऐतिहासिक कृति उनकी 'आपबीती' कभी लाहौर से उर्दू में छपी थी। आर्यसमाज ने कभी इसका उद्धार करने की बात ही नहीं सोची। मेरे मन में इसे उर्दू से अनूदित करके सम्पादन करने का विचार आया तो परोपकारी के एक गत अंक में इस विषय में कुछ लिखा भी। किसी सभा संस्था के किसी अधिकारी ने तो इस पर कोई प्रतिक्रिया न दी। कुछ आर्ययुवकों ने इस करणीय कार्य को करने की प्रेरणा दी।

विशेषकर अमेरिका से श्री रणजीत ने इसे अतिशीघ्र हाथ में लेने को कहा। उनके कुछ दिन के पश्चात् प्रसिद्ध ऋषिभक्त स्वर्गीय श्री रतिराम जी शर्मा के सुपुत्र का दिल्ली से फोन आया। आपने मेरे स्वास्थ्य के बारे पूछताछ करके यह जानना चाहा कि आजकल क्या लिख रहे हो? मैंने कहा, ''लेखन-कार्य तो प्रतिदिन करता ही हूँ।'' पूछा, ''आगे की क्या योजना है?'' मैंने कहा, ''श्री रणजीत आदि की प्रेरणा से भाई जी की आपबीती करुणा व प्रेरणाओं से परिपूर्ण पुस्तक को हाथ में लूँगा। कोई छपवा भी देगा।'' उनके पिता जी मेरे प्रेमी थे। वह झट से बोले कि हमारा परिवार इस कार्य का दायित्व लेता है। मैंने तभी कह दिया पं. रतिराम जी की मधुर स्मृति में इसका प्रकाशन होगा। पं. लेखराम जी और भाई जी दोनों का जन्म झेलम ज़िला पंजाब का था। पं. लेखराम जी के बलिदान-पर्व पर इसे आरम्भ कर दूँगा। पर्याप्त नई सामग्री भी इसके साथ दी जावेगी। प्रभु जीवन की साँझ में इस काज को सिरे

चढ़ाने की भरपूर ऊर्जा देंगे। ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है। ''जीवन के अन्तिम श्वास तक यह लेखनी चलती रहे।''

धर्मवीर जी की चुप्पी का रहस्य जानिये- 'अमर धर्मवीर' पुस्तक में मैने धर्मवीर जी की एक अधूरी घटना दी है। उसमें उनके जीवन का एक पक्ष तो आ गया। दूसरा वहाँ रह गया। आर्यसमाज के मिशनरी भावना के युवकों के लिये इसे संक्षेप से यहाँ दिया जाता है। धर्मवीर जी एक जाने-माने वैदिक विद्वान् को ऋषि उद्यान में लाना चाहते थे। आपने मुझे कहा, ''आप भी इस बात में कुछ सहयोग करें। कोई नाम सुझायें।'' मैंने कहा, स्वामी वेदरक्षानन्द जी की कोटि का विरक्त विद्वान् उपयुक्त रहेगा। उन्हें लावें। आपने कहा, ''जैसे भी हो सके आप उन्हें यहाँ आने की प्रेरणा देकर ले आवें।''

धर्मवीर जी ने कहा, ''आपका उनसे प्रेम है। पहचान है। आप उन्हें यहाँ अवश्य लावें।'' मैंने कहा, ''वह भी गुरुकुल झज्जर की देन हैं। आपके रिश्तेदार, परिवार से हैं। मेरे से अधिक आपके कहे का प्रभाव पड़ेगा।'' यह सुनकर धर्मवीर जी दंग रह गये। बोले, कैसे? मैंने कहा, ''वह एक सम्पन्न परिवार से हैं। मैं उनके घर पर भी गया था।'' धर्मवीर जी ऐसे गुरुकुलिये कि उन्हें तो पता ही नहीं था कि इतना ऊँचा विद्वान् उन्हीं के एक अपने परिवार की देन है। धर्मवीर जी यह सुनकर मौन हो गये।

बात कुछ ऐसी थी कि धर्मवीर जी जानते थे कि वह यहाँ आ भी गये तो किसी स्रोत से सब जान जावेंगे कि उस विरक्त विद्वान् से उनके पारिवारिक सम्बन्ध थे या हैं। इससे कोई अच्छा सन्देश नहीं जावेगा। लोग समझेंगे कि मैं इस पर अधिकार जमाना चाहता हूँ। आप डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी, श्री विरजानन्द जी से कहलवा कर उन्हें खींच सकते थे, परन्तु फिर इस विषय पर आगे कोई बात चलाने का प्रश्न ही नहीं था। कितनी पवित्र और ऊँची सोच है। आज देशभर में आर्यसमाज की सम्पत्ति, मन्दिर, संस्थायें अधिकार में लेने के नये-नये षड्यन्त्र हो रहे हैं और ऐसे आर्य भी हैं जो आर्यमन्दिरों को अपनी निजी दुकान व घर बनाये बैठे हैं।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की दूरदर्शिता- श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के जीवन के दो विशेष प्रसंग मुझे याद आ गये। देश, धर्म तथा जाति-हित में धर्मप्रेमी इनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। स्वामी जी की ये घटनायें हमारे लिये अनुकरणीय हैं। सन् १९५४ में उपाध्याय जी की आत्मकथा छपकर प्रसारित हो गई। मैं इसका प्रकाशन-पूर्व अग्रिम सदस्य था। इसके छपते ही लाला सन्तलाल विद्यार्थी जी ने जावेद जी के निवास पर मुझे कहा, ''उपाध्याय जी ने ग्रन्थ के आरम्भ में यह मुक्तक दिया है-

याद मेरी तुम्हें रहे न रहे,
ज़िक्र मेरा कोई करे न करे।
मर्सिया ख़ुद ही अपना लिख जाऊँ,
क्या पता फ़िर कोई लिखे न लिखे।।

यह सुनाकर कहा, गुरुजी को आप पर विश्वास नहीं कि उनके मरणोपरान्त आप उनकी जीवनी लिखेंगे। इसके कुछ दिन के पश्चात् मैं दीनानगर स्वामी जी के दर्शन करने गया। उन्हें उपाध्याय-साहित्य में मेरी रुचि का पता था। आपने पूछा, ''उपाध्याय जी का 'जीवन-चक्र' पढ़ा है?'' मैंने कहा, जी हाँ सुरुचि से पढ़ा है। आपने भी ये पंक्तियाँ बहुत भावपूर्ण मुद्रा में मुझे सुनाईं। मैं श्री महाराज की मुद्रा को समझ गया कि आप प्रेरणा दे रहे हैं कि उपाध्याय जी की जीवनी कभी आपको लिखनी है। उनकी जन्म-शताब्दी पर सन् १९८१ में वह छप भी गई और गत चालीस वर्ष में पाँचवीं बार छपकर प्रचारित हो चुकी है। जो एक कीर्तिमान मानना पड़ेगा। स्वामी जी की सत्प्रेरणा का इसे चमत्कार मानना पड़ेगा और किस आर्यनेता की जीवनी इतने काल में पाँच बार छपी है? प्रभु का धन्यवाद।

इसी के साथ स्वामी जी के जीवन का दूसरा पक्ष भी देखिये। श्रद्धेय पं. चमूपति जी की कोटि के यशस्वी विद्वान्, कवि, साहित्यकार ने स्वामी जी की जीवनी लिखने के लिये उनके आरम्भिक काल की कुछ घटनायें बताने की उनसे विनती की। आपने अपने सच्चे पक्के शिष्य को एक भी घटना नहीं बताई। मुझे कविवर अजीतसिंह 'किरती' ने मठ में ही सुनाया कि आप पंजाबी कविता में स्वामीजी की जीवनी लिखने लगे तो स्वामी जी से आरम्भिक काल की कुछ जानकारी लेनी चाही। आपने अपने समर्पित शिष्य किरती को भी कुछ न बताया। किरती जी ने सुन्दर

शैली में पुस्तक लिख तो दी, परन्तु पाण्डुलिपि घूमते-घूमते सुना है कि संगरिया पहुँच गई। मैं भी यहाँ-वहाँ खोजते-खोजते संगरिया (राजस्थान) भी गया, परन्तु मुझे किसी ने दिखाई नहीं।

मास्टर आत्मारामजी, पं. गंगाप्रसाद उपाध्यायजी सब पूज्य पुरुषों की जीवनी की चिन्ता करनेवाले महात्मा का यह बड़प्पन समझ जावे अथवा विरक्ति, जिसने दो यशस्वी शिष्यों को अपने बारे कुछ भी बताना उचित न समझा। मैंने तो फिर भी ऋषि जीवन के पश्चात् आर्यसमाज में उनके जीवन की सामग्री की खोज में देशभर में सघन और व्यापक यात्रायें कीं। यति की धुन के बलिहारी!

राजनेता इस घृणित पाप से क्यों नहीं लड़ते- हमारे देश के नेता परस्पर लड़ते तो बहुत हैं। उ.प्र., मध्यप्रदेश आदि में काँग्रेस के नेता विशेषरूप से किसी न किसी घटना को लेकर बोलते ही रहते हैं। काँग्रेस के श्री राहुल तथा प्रियंका तो किसी पीड़ित परिवार में संवेदना प्रकट करने उनके घर तक भी पहुँच जाते हैं। यह बात देखने में बहुत अच्छी लगती है, परन्तु आश्चर्य का विषय तो यह है कि गेंगरेप की ठगी की परिवार में कहीं पत्नी की, कहीं पति की और कहीं कुछ वृद्ध माता-पिता की घटनायें नित्यप्रति दैनिक भास्कर जैसे लोकप्रिय पत्र में पंजाब राजस्थान की भी पढ़कर कलेजा फटता है। न जाने राजनेता नित्यप्रति होने वाले इन कलङ्कपूर्ण अपराधों के विरुद्ध न तो कहीं प्रदर्शन करते हैं, न ही रैलियाँ निकालते हैं और घर में जानेवाले राहुल और प्रियंका पंजाब आकर किसी पीड़ित परिवार से क्यों न मिलते?

न भाजपाई आन्दोलन करते हैं और न केजरीवाल पंजाब की गेंगरेप की किसी घटना पर चुप्पी तोड़ता है। साधु-सन्त जो ईश्वर-दर्शन के लेख-प्रवचन पत्रों में छपवाते हैं वे कोई यात्रा और कोई आन्दोलन क्यों नहीं चलाते। बाबा आदित्यनाथ प्रतिदिन आत्मनिर्भर भारत के लिये टी.वी. में दर्शन देते हैं। गन्दगी की लहर चल रही है। साधु टोली लेकर देशभर में इस पाप के विरुद्ध अभियान छेड़ें तो उनको यश मिलेगा। कश्मीरी पण्डित घरों से निकाले गये तो गुलामनबी और उसकी सारी कांग्रेस उनके लिये एक बार भी न बोली। भारत स्वाभिमान वाले रामदेव जी का सारा ध्यान अपनी औषधियों के प्रचार पर केन्द्रित है। देश का मान-सम्मान मिट्टी में मिल रहा है। गुरु अर्जुनदेव जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, भाई परमानन्द और लाला लाजपतराय सरीखे बलिदानियों की भूमि पंजाब के एक मास के ऐसे-ऐसे गन्दे समाचार पढ़कर प्रत्येक सहृदय व्यक्ति रक्त-रोदन करेगा। सत्ता की भूख ने लीडरों को गूंगा, बधिर व अन्धा बना दिया है। उन्हें पता ही नहीं कि क्या हो रहा है।

पं. लेखराम जी के प्रति

क्या अन्त तेरा हो गया?

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

सींची ऋषि की वाटिका अपने लहू की धार से।
तूने अमर पद पा लिया, उपकार से, उपकार से।।
ईश्वर की वाणी वेद पर, तेरा अटल विश्वास था।
निर्भीक होकर गर्जना, तेरा यह गुण इक ख़ास था।।
जीते विरोधी सैकड़ों निज तर्क की तलवार से...
परिवार का घर-बार का तुझको तनिक न ध्यान था।
बस लक्ष्य तेरा वीरवर, बलिदान था, बलिदान था।।
क्या अन्त तेरा हो गया तीखी छुरी की धार से...
गाथा अमर तेरी पथिक, देती अनूठी प्रेरणा।
करता रहा संसार में, सञ्चार प्रतिपल चेतना।।
जन-मन में कैसे घुस गया अपने मृदुल व्यवहार से...
तू ज्ञान का भण्डार था, तेरी निराली शान थी।
सिर धर तली फिरत रहा, तेरी यही पहचान थी।।
गूञ्जेगी जगती यह सदा, तेरी पथिक जयकार से...
वाणी में तेरी ओज था, उर में तिरे उद्‌गार थे।
बेटा भी प्यारा दे दिया, दिल में तिरे अंगार थे।।
जीवन सुशोभित कर गया तप त्याग के सिङ्गार से।
क्या अन्त तेरा हो गया तीखी छुरी की धार से।

अबोहर

महाभारत में दर्शन शास्त्र

उदयवीर शास्त्री

मूलरूप में महाभारत एक परिवार के पारस्परिक संघर्ष का विवरण मात्र है। कुरु एक राजवंश है, इस आधार पर वह समस्त परिवार 'कौरव' कहा जाता है। पर दो भाइयों की सन्तानों में व्यावहारिक विभेद के लिये पिता के नाम पर पुत्र 'पाण्डव' अर्थात् पाण्डु की सन्तान नाम से प्रसिद्ध हुए। जिस भूभाग पर इनका शासन था, उसका नाम कुरुदेश है। इस देश का शासक होने से राजवंश 'कुरु' कहलाया अथवा इस वंश के किसी पूर्वज का नाम 'कुरु' था, उसके द्वारा सर्वप्रथम अधिशासित होने के कारण यह भूभाग कुरुदेश बना, इसका निश्चयात्मक विवरण देना कठिन है। पर यह किसी सीमा तक निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस वंश के दो भाइयों की सन्तानों में प्रदेश के शासन-निमित्त संघर्ष हुआ, उसी का विस्तृत उल्लेख महाभारत का मूलरूप है।

कहा जाता है कि इस संघर्ष या युद्ध आदि का विवरण मूलरूप में, सत्यवती-सुत कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने काव्यरूप से लिपिकार गणेश जी द्वारा लिपिबद्ध कराया। जब इसी को अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय द्वारा किये गये एक सत्र के अवसर पर वैशम्पायन व्यासशिष्य ने सुनाया, तब इसमें कुछ वृद्धि कर दी गई। कालान्तर में इसी की कथा नैमिषारण्य में यज्ञादि प्रसंगों के अवसर पर वहाँ एकत्रित हुए समाज को सौति नामक कथावाचक ने सुनाई। कहते हैं, उन अवसरों पर इस ग्रन्थ का कलेवर बहुत विस्तृत कर दिया गया। इसके अतिरिक्त, यह पूर्णरूप से सम्भव है कि अनेक अवसरों पर विभिन्न लेखकों द्वारा विविध प्रकार की ज्ञान-सामग्री का अन्तर्निवेश इस ग्रन्थ में होता रहा है, जिसका कोई लेखा-जोखा हमारे पास नहीं है। इसी के परिणामस्वरूप यह ग्रन्थ विविध ज्ञान-विज्ञान का आगार बन गया है। तात्कालिक समाज ने इसे वेद के समान दर्जा दिया और इसे 'पाँचवाँ वेद' कहकर याद किया जाता रहा है, ऐसे ही आधारों पर एक कहावत बन गई है-

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।

जो महाभारत में है, वही अन्य सब साहित्य में है और जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है। इसमें कुछ सच्चाई भी है। महाभारत की घटना के अनन्तर जितना लौकिक साहित्य लिखा गया है, उस समस्त के आधे से अधिक का उपजीव्य यही ग्रन्थ कहा जा सकता है। इस रूप में दार्शनिक विषयों का विवरण प्रस्तुत करने से भी यह ग्रन्थ वञ्चित नहीं रहा।

ग्रन्थ के अन्य भागों को अविवेच्य समझ कर इस समय उनको छोड़ता हुआ भी, यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि इस ग्रन्थ के अनेक भागों में जो दार्शनिक विचार बिखरे हुए वर्णित हैं, उनमें से कितने या कौन-से सत्यवती-सुत वेदव्यास के लिखे हैं और कौन से कालान्तर में विभिन्न विद्वानों द्वारा अन्तर्निर्दिष्ट किये गये हैं।

महाभारत का 'गीता' एक ऐसा अंश है, जिसमें स्पष्ट रूप से दार्शनिक विचारों का उल्लेख हुआ है। सर्गादि की रचना और आत्मतत्त्व का विवेचन ही दर्शन का रूप है, जो गीता में स्पष्ट अभिव्यक्त है। पर्याप्तकाल से विद्वत्समाज व सर्वसाधारण जनता में इसकी मान्यता रही है। वर्तमानकाल में इस प्रकार के साहित्य की तुलना से देखें, तो गीता का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार हमारे दृष्टिगोचर हो रहा है, पर सर्वाङ्ग ज्ञान व प्रतिभा की दृष्टि से अपने आपको अधिक तेजस्वी समझनेवाला समाज इसमें सन्देह उत्पन्न करता है कि गीता, सत्यवतीसुत कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास की रचना है। तब महाभारत के अन्य दार्शनिक अंशों के विषय में निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि यह सब वेदव्यासोक्त है।

यह होते हुए भी हमारे सम्मुख वह महाभारत का ही अंश है, भले वह किसी का लिखा हो। हमें उसका व्यवहार इसी रूप में करना है। इस यथार्थ को दृष्टि में रखते हुए एक विवेच्य स्थिति सामने आती है कि महाभारत में जिन दार्शनिक विचारों का विवरण प्रस्तुत हुआ है, उनमें अद्वैत तत्त्व का उल्लेख उस रूप में, जो आज उपलब्ध व ज्ञात है, नगण्य है, अथवा नहीं है। वर्तमान ब्रह्मसूत्रों के रचयिता बादरायण अपर नाम वेदव्यास हैं, तब इन सूत्रों को उन्हीं

भावनाओं में समझने का प्रयास होना चाहिये, जो इस अर्थतत्त्व के आधार पर महाभारत में अभिव्यक्त हैं। अस्तु, इस अवसर पर महाभारत में वर्णित दार्शनिक विचारों का उल्लेख करना हमारा अभीष्ट है।

अधिक शाखाओं के रूप में दर्शन का उल्लेख महाभारत में उपलब्ध नहीं होता। अनेक स्थलों में प्रसंग के अनुसार ऐसे वर्णन अवश्य है, जिनको दर्शन की किसी शाखा का अंग मान लेने को विचारकों में उत्साह देखा जाता है। दर्शन की उपलब्ध शाखाओं में सर्वाधिक वर्णन सांख्य का है। उसके अनन्तर सात्वत दर्शन अथवा पञ्चरात्र दर्शन का उल्लेख हुआ है।

भौतिक दर्शन- यद्यपि चार्वाक और बृहस्पति के नामों का उल्लेख महाभारत में है, परन्तु बार्हस्पत्य अथवा प्रसिद्ध चार्वाक दर्शन के कोई संकेत महाभारत में उपलब्ध नहीं होते। गीता के सोलहवें अध्याय में, जहाँ आसुरी संपत् का वर्णन किया गया है, उस प्रसंग के आठवें पद्य में इस दर्शन के बीज निहित प्रतीत होते हैं। अगले श्लोक में इसको एक 'दृष्टि' बनाकर, इसके दर्शनरूप का संकेत अवगत होता है। दर्शन की इस विचारधारा के प्राचीन होने पर भी, चार्वाक अथवा बार्हस्पत्य दर्शन नाम से इनका वर्णन महाभारत में नहीं है।

सम्भव है, वैदिक समाज ने इस दर्शन के प्रभाव को क्षीण करने में प्रबल सहयोग दिया, जिससे कालान्तर में उसे सफलता मिली। महाभारतकाल ऐसा ही था। शान्तिपर्व (३८) में प्रसङ्ग है- जब युधिष्ठिर ने नगर में प्रवेश किया और सैकड़ों वेदज्ञ ब्राह्मण उसके अभिनन्दन के लिये सन्नद्ध थे; उसी समय एक साधुवेशधारी चार्वाक नामक व्यक्ति अकस्मात् वहाँ आकर धृष्टतापूर्वक घोषणा करता है कि मैं यहाँ एकत्रित ब्राह्मणों की भावना को अभिव्यक्त कर रहा हूँ कि इस राजा युधिष्ठिर को धिक्कार है, जिसने अपने ज्ञाति-जनों को नष्ट कर दिया। वहाँ उसे दुर्योधन का मित्र एक राक्षस बताया है। अन्त में सब ब्राह्मण उसके कथन का विरोध करते हैं और उसे समाप्त कर देते हैं। क्या इस प्रसंग का लेखक यह अभिव्यक्त करना चाहता है कि दुर्योधन के व्यवहार में अभिव्यक्त विशुद्ध भौतिकवादी विचारधारा के प्रतीक चार्वाक को समवहित ब्राह्मणवर्ग ने तीव्र विरोध द्वारा अपने समाज से उच्छिन्न कर दिया।

कर्मण्यवादी दर्शन- इसी प्रकार शान्तिपर्व (१७७) में मङ्कि नामक एक प्राचीन मुनि का प्रसंग है। उसने घोर प्रयत्न कर कुछ धन जोड़ा और बड़े स्नेह से छोटे-छोटे दो बछड़े खरीद कर उन्हें पालना शुरु किया। वह मुनि उन दोनों बछड़ों को मजबूत रस्से से जोट लगाकर, उन्हें चुगने के लिए छोड़ देता। एक दिन संयोगवश उनके सामने बैठे हुए ऊँट के इधर-उधर से जोट में बँधे बछड़ों ने निकलने का प्रयास किया। जेसे ही वह जोट की रस्सी ऊँट की गर्दन के ऊपर आकर रगड़ी, ऊँट भड़भड़ा कर उठा, दोनों बछड़े इधर-उधर लटक गए। इस बवाल को न सहता हुआ ऊँट भागा। फलस्वरूप इधर-उधर लटकते दोनों बछड़े गला घुटने से मर गए। भागते ऊँट के पीछे तेजी से भागता मङ्कि मुनि कह उठा-

मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम।

इस दुर्दान्त दृश्य से मुनि का आत्मा बैठ गया। उसके समस्त जीवन के परिश्रम का फल-जैसे-तैसे जोड़ी सम्पत्ति-इस घटना में नष्ट हो चुका था। उसने पूर्णरूप से निर्विण्ण होकर परिश्रम व पुरुषार्थ की विफलता और भाग्य की बलवत्ता की सराहना की। उसके इन विचारों का महाभारत के उक्त प्रसंग में वर्णन है। ये विचार 'मङ्कि-गीता' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कतिपय आधुनिक विद्वानों ने इन विचारों को नियतिवादी, भाग्यवादी अथवा अकर्मण्यवादी ध्वनि का रूप देकर युद्धकाल के आस-पास होने वाले एवं बौद्ध साहित्य में वर्णित 'मंखलि गोशाल' नामक व्यक्ति को ही मङ्कि के उपाख्यान रूप से महाभारत में वर्णित माना है। इस ढंग के महाभारतीय प्रसंगों में अभिव्यक्त विचारों को विविध दार्शनिक शाखाओं के रूप में उभारा जा सकता है।

सात्वत अथवा पञ्चरात्र दर्शन : श्रीकृष्ण के नामों में एक 'सात्वत' नाम भी है। शान्तिपर्व (अ. ३४२, श्लोक ७७-७८) में इसका निर्वचन देकर बताया है कि यह कृष्ण का नाम किस आधार पर है। पञ्चरात्र दर्शन के अनुसार मूलभूत तत्त्व चार व्यूहों में अवस्थित बताया जाता है। वे चार व्यूह हैं- वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध। ये क्रमशः परमात्मा, जीवात्मा, मन और अहंकार रूप हैं।

पञ्चरात्र सम्प्रदाय के प्रामाणिक ग्रन्थ 'अहिर्बुध्न्य संहिता' आदि में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। यह दर्शन, वर्तमान में प्रचलित वैष्णव दर्शन व सम्प्रदाय का उपजीव्य माना जाता है।

शान्तिपर्व के २२८ वें अध्याय में जनदेव नामक मिथिलाधिप जनक और सांख्याचार्य पञ्चशिख के संवाद का उल्लेख है। यहाँ ११ वें श्लोक में पञ्चशिख का वर्णन करते हुए उसका एक विशेषण 'पञ्चरात्रविशारद' दिया गया है। इस दर्शन के सम्प्रति उपलब्ध साहित्य में इसकी जो रूप-रेखा समझी जाती है, साधारण रूप में उसके दो भेद हैं, एक-दर्शनात्मक, जिसमें जगद्रचना आदि का विवरण दिया जाता है। दूसरा- उपासनाविधि अथवा अपने समप्रदाय की दृष्टि से पूजा-अर्चा का प्रकार। प्रथम के विषय में कुछ उल्लेख्य अपेक्षित है।

जैसाकि पूर्व कहा, जगद्रचना की दृष्टि से इस दर्शन में मूलतत्त्व को चार व्यूहों के रूप में अवस्थित माना गया है। इस दर्शन का महाभारत में उल्लेख शान्तिपर्व के कतिपय अध्यायों (द्रष्टव्य ३३९ तथा ३४८) में हुआ है। पूर्वाध्याय में चारों व्यूहों का विस्तृत विवरण है। इस प्रसंग के अध्ययन से प्रतीत होता है, उस समय इस दर्शन का स्वरूप कापिल सांख्य से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था। वासुदेव-परमात्मा और संकर्षण-जीव के परस्पर विभेद का स्पष्ट उल्लेख किया गया है (२७-२८)।

प्रतिसर्ग का वर्णन करते हुए पृथिवी आदि का अपने-अपने कारणों में लय दिखाकर समस्त व्यक्त का अव्यक्त में लय बताया है। सर्ग-प्रतिसर्ग का यह क्रम सांख्य-प्रक्रिया से सन्तुलित होता है। अव्यक्त का वासुदेव-परमात्मा में लय कहकर बताया है कि यह समस्त विश्व वासुदेव-परमात्मा का शरीर रूप है। इसको त्रिगुणात्मक कहकर इसकी अव्यक्त अवस्था को 'मूर्तिविवर्जित' बताया है (५८)। इससे मूल उपादान का अकार्य होना स्पष्ट होता है। इसलिये, जहाँ अव्यक्त का वासुदेव में लय कहा है, उसे औपचारिक ही समझना चाहिये। फलतः परमात्मा और प्रकृति संहित रूप में जगत् के कारण हैं, ऐसी मान्यता पञ्चरात्र दर्शन की प्रतीत होती है। अगले अध्याय में केवल एक व्यूह, दो व्यूह और तीन व्यूह मानने वाली शाखाओं का भी उल्लेख है (३४८/५७)। गम्भीर विवेचन के फलस्वरूप यह असम्भव है कि वर्तमान वैष्णव सम्प्रदाय के दार्शनिक विभेदों का उपजीव्य, प्राचीन पञ्चरात्र का शाखाभेद रहा हो।

अनेक आधारों पर मेरी ऐसी धारणा है कि सात्वत दर्शन सम्बन्धी ये सब विवरण भारतयुद्ध-काल के पर्याप्त अनन्तर प्रस्तुत ग्रन्थ में समाविष्ट किये गये हैं।

सांख्य-योगदर्शन- इन दर्शनों की विचारधारा से समस्त महाभारत ग्रन्थ ओत-प्रोत है। किन्हीं भी अन्य दर्शनिक विचारों के प्रस्ताव में त्रिगुण एवं अन्तःकरण आदि का उल्लेख अनिवार्य रूप से देखा जाता है। मिथिलाधिप जनक राजाओं के दरबार में पञ्चशिख, सुलभा ब्रह्मवादिनी तथा अन्य अनेक आचार्यों के संवादरूप से इस दर्शन का विस्तुत उल्लेख महाभारत ग्रन्थ प्रस्तुत करता है, जहाँ पुरुष, त्रिगुणात्मक प्रकृति तथा सांख्यप्रक्रिया के अनुसार उसके विकारों एवं तत्सम्बन्धी अन्य मान्यताओं का अनेक प्रसंगों में वर्णन किया गया है। इन सब विचारों के लिये शान्तिपर्वान्तर्गत मोक्षधर्म पर्व द्रष्टव्य है।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है।

-सम्पादक

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज का स्वतन्त्रता-संग्राम में योगदान

डॉ. बलवीर आचार्य

देशप्रेम आर्यसमाज का प्रधान अंग है। यह सदा से ही देशभक्ति की धारा से राष्ट्र को नवीन चेतना प्रदान करता रहा है। आर्यसमाज ने भारतीय स्वतन्त्रता-देवी को तृप्त करने के लिये बलिदान की उत्कृष्ट भूमिका निभाकर स्वाधीनता के इतिहास में आश्चर्यजनक उदाहरण प्रस्तुत किया है। यदि हम यह कहें कि १५ अगस्त १९४७ को जिस स्वाधीनता यज्ञ की पूर्णाहुति हुई, उसका आरम्भ महर्षि दयानन्द ने किया था और अन्तिम आहुति महात्मा गांधी ने डाली थी, तो अत्युक्ति न होगी।

इतिहास के विद्यार्थी यह जानते ही होंगे कि महात्मा गांधी को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाने वाले गोपालकृष्ण गोखले थे। गोपालकृष्ण गोखले को देशभक्ति की प्रेरणा महादेव रानाडे से मिली थी तथा महादेव रानाडे ने राष्ट्रभक्ति का पाठ महर्षि दयानन्द से पढ़ा था। १८७५ ई. में महर्षि दयानन्द जब पूना गये तब महादेव रानाडे का सम्पर्क उनसे हुआ। महादेव रानाडे महर्षि के घनिष्ठ होते चले गये। इसी के परिणामस्वरूप रानाडे को महर्षि दयानन्द ने अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा में नियुक्त किया था।

महर्षि दयानन्द ने १८७४ ई. में सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में देश के गौरवशाली इतिहास का उल्लेख करके, स्वराज्य की घोषणा करते हुए लिखा था, ''इक्ष्वाकु से लेकर कौरव-पाण्डव तक सर्व-भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा-थोड़ा प्रचार आर्यावर्त से भिन्न देशों में भी रहा तथा इसमें प्रमाण है कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश, इनके स्वायंभवादि सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्यावर्त के प्रथम राजा हुए, जिन्होंने यह आर्यावर्त देश बसाया है।

अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड स्वतन्त्र स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है जो कुछ है सो भी विदेशियों के पदाक्रान्त है, कुछ थोड़े से राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दु:ख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अर्थात् मत-मतान्तर के आग्रहरहित अपने-पराये का पक्षपातशून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायी नहीं है।'' पूर्ण स्वराज्य की इससे अधिक और क्या व्याख्या हो सकती है। ये पँक्तियाँ उस समय लिखीं गई थीं जिस समय स्वतन्त्रता के लिये सोचने पर मृत्युदण्ड या कालेपानी के सिवाय कोई विकल्प नहीं था। यदि किसी के मुख से भूले-भटके आजादी की बात निकल जाती थी तो गर्म-गर्म लोहे की शलाकाओं से उसके शरीर की बोटी-बोटी नोंचकर उसके अस्थिपंजर को आवारा कुत्ते की भाँति चौराहे पर फेंक दिया जाता था ताकि दूसरे स्वतन्त्रता-प्रेमी भी उससे शिक्षा ग्रहण कर लें।

विचार करने की बात यह है कि १८७४ ई. में जब महर्षि दयानन्द ने अखण्ड, सार्वभौम, स्वतन्त्र राज्य की बात लिखी थी उस समय किसी के मन में भी स्वराज्य का विचार नहीं था। दादाभाई नौरोजी ने तो १९०६ ई. में पहली बार 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण किया था। इसके दस वर्ष बाद लखनऊ कांग्रेस में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने स्वराज्य को भारतवासियों का जन्मसिद्ध अधिकार घोषित किया था, किन्तु कांग्रेस ने तो १९२९ ई. में लाहौर सम्मेलन में देश की पूर्ण स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये प्रस्ताव पास किया था। देश के मनीषी जिस लक्ष्य को १९२९ ई. में स्वीकार करते हैं उसकी घोषणा महर्षि दयानन्द ने ५५ वर्ष पूर्व १८७४ ई. में ही कर दी थी।

इसी तथ्य की चर्चा करते हुए 'होमरूल आन्दोलन' की प्रवर्तक श्रीमती एनी बेसेन्ट ने कहा था कि ''भारत भारतवासियों के लिये है, इसके प्रथम उद्घोषक महर्षि दयानन्द थे।''

इसमें सन्देह नहीं कि स्वतन्त्र-राज्य की प्राप्ति का बीजारोपण महर्षि दयानन्द ने ही किया था। जिस समय

महर्षि ने कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया था उस समय भारत के राजनीतिक गगन पर अंग्रेजों का साम्राज्य दोपहर के प्रचण्ड सूर्य के समान देदीप्यमान् था। शिक्षित समाज इंग्लैंड की सभ्यता से प्रभावित हो रहा था। विदेशी सभ्यता और संस्कृति यहाँ पर अपने पैरों को दृढ़ता से जमा रही थी। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द ने भारतवासियों के हृदय में राजनीतिक स्वाधीनता की अभिलाषा को जन्म देकर विदेशों की ओर भागती हुई देशवासियों की दृष्टि को स्वदेशाभिमान सिखानेवाले अपने उपदेशों द्वारा खींचकर भारत के भव्य वैभव की ओर आकृष्ट कर लिया। महर्षि दयानन्द ने भारत की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है, ''यह आर्यावर्त देश ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। पारसमणि पत्थर सुना जाता है यह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लौहरूपी दरिद्र विदेशी, छूने के साथ ही 'सुवर्ण' अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।''[१]

इसी प्रकार दूसरे स्थान पर देशप्रेम से आप्लावित होकर ऋषि लिखते हैं ''जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है और आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब जने मिलकर करें।''[२] ये सब वाक्य महर्षि ने देशवासियों को देश-प्रेम का पाठ पढ़ाने के लिये लिखे थे, जिससे वे देशाभिमान से सजग होकर देश को स्वतन्त्र करा सकें।

महर्षि दयानन्द भारतवासियों के हृदय में स्वदेशाभिमान की जो भावना उत्पन्न करना चाहते थे उसका सार सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में इस प्रकार है-

''सृष्टि से लेके पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समयपर्यन्त आर्यों का 'सार्वभौम चक्रवर्ती' अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे, क्योंकि कौरव और पाण्डव पर्यन्त यहाँ के राज्य और राजशासन में सब भूगोल के राजा और प्रजा चलते थे।'' इसी समुल्लास के अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर से आरम्भ कर यशपाल तक के १२४ आर्यराजाओं की नामावली को उन्होंने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'मोहनचन्द्रिका' पत्र से उद्धृत किया है। किस राजा ने कितने समय तक राज्य किया था, इसका भी उल्लेख किया गया है। महर्षि दयानन्द के अनुसार इन राजाओं ने ४१५७ वर्ष ९ मास १४ दिन राज्य किया था। राजा यशपाल के ऊपर सुल्तान शहाबुद्दीन गौरी गढ़ गजनी से चढ़ाई करके आया और राजा यशपाल को प्रयाग के किले में संवत् १२४९ में पकड़कर कैद किया।

इस प्रकार देश के प्राचीन चक्रवर्ती राज्य की याद दिलाकर यह बताना कि पुन: प्रयत्न करने से देश स्वतन्त्रता के शिखर पर आरूढ़ हो सकता है, महर्षि दयानन्द का भारतीय स्वाधीनता के लिये यह पहला कदम था।

दूसरा कदम महर्षि दयानन्द ने उन कारणों को दूर करने के लिये उठाया था जिनसे भारत प्राचीन गौरव से गिरकर संसार में अपमानित हो रहा था। उन कारणों पर गम्भीरता से विचार करने पर महर्षि दयानन्द इस तथ्य पर पहुँचे कि मानसिक दासता के कारण ही भारत राजनीतिक तथा आर्थिक दासता में बँधा हुआ है। रोग को पहचानकर महर्षि दयानन्द ने उसके अनुकूल ही उपचार किया। जिसके फलस्वरूप भारतवासी पुन: विचार-स्वातन्त्र्य की ओर अग्रसर हुए।

यह माना हुआ सिद्धान्त है कि मानसिक स्वाधीनता के बिना सामाजिक स्वाधीनता और सामाजिक स्वाधीनता के बिना राजनीतिक स्वाधीनता का प्रादुर्भाव सम्भव नहीं। इसी कारण ऋषि दयानन्द ने जहाँ भारतवासियों को भक्ति-भावना का अमृत पिलाया वहाँ साथ ही मानसिक पराधीनता की शृंखलाओं को काटकर राष्ट्र को स्वाधीनता के मार्ग पर प्रवृत्त कर दिया।

एक पर्वतीय मार्ग के समान महर्षि दयानन्द के जीवन में अनेकों समस्याओं का समावेश हुआ, परन्तु प्रत्येक स्थिति में उन्होंने स्वाधीनता के आन्दोलन को जारी रखा, जो समय-समय पर उनके भाषणों और लेखों से प्रकट होकर देशवासियों को नवीन चेतना प्रदान करता रहा।

महर्षि दयानन्द जी अपने प्रवचनों और लेखों के माध्यम से भारतीयों को स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये अहर्निश प्रेरित करते रहते थे। दानापुर (बिहार) में जोन्स नामक एक अंग्रेज व्यापारी से वार्तालाप करते हुए स्वामी जी बोले, ''यदि भारतवासियों में एकता तथा सच्ची देशभक्ति के भाव उत्पन्न हो जाएँ तो विदेशी शासकों को अपना

बोरिया-बिस्तर उठाकर तुरन्त जाना पड़ेगा।''[३]

महर्षि दयानन्द जी ने '**संस्कृत वाक्य प्रबोध**' नामक एक छोटी-सी पुस्तक संस्कृत भाषा सिखाने के लिये लिखी थी। इस पुस्तक में भी देशभक्ति का पाठ सिखाने के लिये पाँच प्रकरण लिखे। इस पुस्तक में स्वराज्य की भावना किस प्रकार प्रकट हुई एक उदाहरण द्रष्टव्य है- जब यह पुस्तक लिखी गई थी तब अफ़गान और अंग्रेजों के बीच युद्ध चल रहा था। अफ़गान परास्त हो रहे थे पुनरपि वे छिपकर आक्रमण करते रहते थे। इसका वर्णन करते हुए स्वामी जी लिखते हैं, ''**पराजिता अपि यवना अद्यापि उपद्रवं न त्यजन्ति।**'' अर्थात् पराजित होकर भी यवन उपद्रव नहीं छोड़ते। इसका उत्तर देते हुए महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं, ''**अयं खलु पशु पक्षीणामपिस्वाभावोऽस्ति यदा कश्चित् तद् गृहादिकं ग्रहीतुमिच्छेत् तदा यथाशक्ति युद्ध्यन्तएव**''[४] अर्थात् यह तो पशु-पक्षियों का भी स्वभाव होता है कि जब कोई उनके घर आदि को छीनना चाहता है तब वे यथाशक्ति युद्ध करते ही हैं। यहाँ महर्षि दयानन्द जी व्यंजना से यह सन्देश देना चाहते हैं कि पशु-पक्षी भी अपने घर को आसानी से नहीं छोड़ते तो मातृभूमि पर विदेशियों के अधिकार को स्वाभिमानी मनुष्य कैसे सहन कर सकते हैं?

महर्षि दयानन्द ने १८७६ ई. में '**आर्याभिविनयः**' नामक पुस्तक ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना के लिये लिखी थी। इसमें भी अनेकशः स्वराज्य और चक्रवर्ती राज्य की प्रार्थना की गई है। ईश्वर-भक्ति के रस में राष्ट्रभक्ति के वीर रस का यह मिश्रण महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय विचारों की ओजस्विता को ही प्रकट करता है। निदर्शनरूपेण कतिपय उद्धरण द्रष्टव्य हैं- तीसरे मन्त्र की व्याख्या में प्रार्थना है कि - हे ईश्वर! आपकी कृपा से....चक्रवर्ती राज्य और विज्ञान रूप धन को मैं प्राप्त होऊँ। पाँचवें मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि -हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो। सोलहवें मन्त्र में कामना की गई कि- हे कृपानिधे! हमको...साम्राज्य.....स्वदेशसुख-सम्पादन आदि गुणों में सब नरदेहधारियों से अधिक उत्तम करो। अठारहवें मन्त्र में स्वराज्य की प्रार्थना करते हुए लिखा है कि- हमको भी सत्यविद्या से युक्त सुनीति देके साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये......... हे कृपासिन्धो भगवन्! हम पर सहाय करो जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े। तैंतालीसवें एवं पैंतालीसवें मन्त्र में चक्रवर्ती राज्य की प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि -हमारे लिये चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को सुख से प्राप्त कर अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो।..... उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके हम वीरों के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हों और अन्त में राज्य-प्रबन्ध की प्रार्थना के साथ इस पुस्तक की समाप्ति करते हुए ऋषि लिखते हैं-

''हे महाविद्य! महाराज! सर्वेश्वर!..........सर्वोत्तम विद्यादिलक्षणयुक्त महाराज्य श्री को हम प्राप्त हों..... और उस श्री को मैं..... राज्य आदि प्रबन्ध के लिये व्यय करूँ।''

यह है महर्षि दयानन्द सरस्वती का राष्ट्र-प्रेम जो उनके हर क्रिया-कलाप में परिलक्षित होता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के बाद उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने स्वतन्त्रता के लिये बलिदान का जो प्रेरक उदाहरण प्रस्तुत किया है वह इतिहास के पृष्ठों पर अंकित होकर भारत की भावी सन्तति को सदा प्रेरित करता रहेगा। आर्यसमाज ने स्वतन्त्रता-आन्दोलन में किसी स्वार्थ के वशीभूत होकर प्रवेश नहीं किया था। स्वाधीनता तो आर्यसमाज का प्रमुख अंग है और आर्यों के कर्त्तव्य कर्मों में प्रमुख कर्म। प्रत्येक आर्य उभयकालीन ईशप्रार्थना में '**अदीनाः स्याम शरदः शतम्**' के द्वारा दासता से दूर रहने की प्रार्थना करता है।

सन् १८५७ ई. की असफल राज्य-क्रान्ति के बाद जब पुनः स्वाधीनता का युद्ध लड़ा गया, चाहे वह किसी भी रूप में लड़ा गया हो, उसके प्रमुख कार्यकर्त्ता आर्यसमाजी ही थे। होते भी क्यों न? देश पर बलिदान होने की अमर भावना तो आर्यों को उनके पथ-प्रदर्शक महर्षि दयानन्द सरस्वती से विरासत में मिली थी।

सन् १९०५ ई. में जब लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन करके राष्ट्र के हृदय को आघात पहुँचाया तो क्षोभ और आक्रोश के साथ बंग-भंग आन्दोलन की चिंगारी

राष्ट्र के एक कोने से उठकर दूसरे कोने तक फैलकर विकराल रूप धारण कर गई। उस समय जिन प्रान्तों में इस अग्नि ने अपना प्रचण्ड रूप धारण किया उनमें पंजाब प्रान्त सबसे आगे था और पंजाब प्रान्त का नेतृत्व करते थे- आर्यसमाज को माता और महर्षि दयानन्द को पिता मानने वाले पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय। उनकी सिंह-गर्जना ने सारे प्रान्त को आवेश की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था। इसी सिंह-गर्जना के कारण उनको 'शेरे पंजाब' की उपाधि से विभूषित किया गया था। स्वभावत: उनके भाषणों से आर्यसमाजी विशेष प्रभावित हुए। इसके बाद पंजाब में जो भी आन्दोलन हुए उनमें हम बहुत से आर्यसमाजियों को आन्दोलन की राह में सबसे आगे खड़ा पाते हैं।

लाला लाजपतराय के बढ़ते प्रभाव को देखकर सरकार तिलमिला उठी और उनको मांडले के किले में नज़रबन्द कर दिया। इस समय सरकार की वक्रदृष्टि आर्य संस्थाओं एवं आर्यसमाजियों पर पड़ी। यह समय आर्यसमाज की अग्निपरीक्षा का था। सरकार ने आर्यों को तंग करने के लिये मनमाने अत्याचार किए। सरकारी नौकरियों से निकाला गया, परन्तु सन्तोष के साथ सब कष्टों को सहते हुए न तो किसी भी आर्यसमाज के सदस्य ने आर्यसमाज से सम्बन्ध तोड़ा और न ही स्वराज्य आन्दोलन से मुख मोड़ा।

सन् १९१९ ई. में जब सरकार ने रोलेट एक्ट बिल पास किया तो उसके विरोध में आर्यसमाज ने जो ऐतिहासिक कार्य किया, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। सत्याग्रह की घोषणा होते ही उत्तरी भारत के प्रमुख आर्यनेता महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने सबसे आगे बढ़कर भाग लिया। फिर तो उनके पीछे सारा ही आर्यजगत् हो गया। चाँदनी चौक में घंटाघर के स्थान पर सुशोभित स्वामी श्रद्धानन्द की मूर्ति आज भी उस समय की याद को ताजा कर रही है, जब उस निर्भय संन्यासी ने सत्याग्रहियों का नेतृत्व करते हुए गोराशाही के सामने गरजते हुए कहा था- 'चला दो गोलियाँ, संन्यासी का सीना खुला है'।

जब गांधी विदेश से आए तब उन्हें मिस्टर गांधी कहा जाता था। वह स्वामी श्रद्धानन्द से मिलने गुरुकुल कांगड़ी गए तब स्वामी श्रद्धानन्द ने उनको महात्मा गांधी कहकर पुकारा और मिस्टर गांधी, महात्मा गांधी बन गये।

सन् १९२१ ई. में महात्मा गांधी ने अंहिसात्मक सत्याग्रह एवं असहयोग की घोषणा की तो स्वामी श्रद्धानन्द ने गांधी जी के पास तार भेजा कि -मैं इस धर्मयुद्ध में सर्वात्मना सम्मिलित रहूँगा। स्वाधीनता युद्ध को धर्मयुद्ध स्वीकार करने का भाव अपने आप में कितनी पवित्रता लिये हुए है। स्वामीजी के इस निर्णय के बाद समस्त आर्यजगत् इस धर्मयुद्ध में कूद गया। जहाँ -जहाँ आर्यसमाजें थीं वहाँ-वहाँ आन्दोलन की चिंगारी सर्वाधिक भड़की और देखते ही देखते अंग्रेजों की जेलें भर गईं। कांग्रेस ने यह पता लगाने के लिये कि सत्याग्रह में भाग लेनेवालों में कौन लोग अधिक हैं? एक कमेटी बनाई थी, जिसमें मोतीलाल नेहरू एवं मौलाना हसरत मुहानी थे। उन्होंने रिपोर्ट दी कि सत्याग्रह में भाग लेने वाले ७० प्रतिशत लोग आर्यसमाजी हैं।[५] इस सत्याग्रह में आर्यसमाजी देवियों ने तो कमाल ही कर दिया, उनमें विद्यावती, सत्यावती, वरसोदेवी, प्रकाशवती तथा शकुन्तला जी मुख्य थीं, जो कि आर्यसमाज मेरठ की सदस्या थीं, रामकली जी ने तो अपने तीन नन्हे बालकों के साथ धरना दिया था। इसी प्रकार शोभावती, अम्बादेवी हलद्वानीवाली ने भी कारागार की यातनाएँ सहीं।[६] हापुड़ में श्री पं. शिवदयालु जी ने विशाल राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता की और वहाँ के हजारों सत्याग्रहियों के साथ जेलयात्रा की। पंजाब में राष्ट्र भक्तों के गुप्त संगठन का संचालन स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी कर रहे थे। दयानन्द उपदेशक विद्यालय की तलाशी भी पुलिस ने बड़ी गहराई से ली थी, क्योंकि स्वामी जी उसके आचार्य थे। वहाँ के छात्रों ने भी उक्त आन्दोलन में भाग लिया था। आगरा आर्य मुसाफ़िर महाविद्यालय को सरकार ने बन्द करा दिया था, क्योंकि वहाँ आर्यसमाज के लिये उपदेशक तैयार किए जाते थे। गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य रामदेव जी ने भी अपने छात्रों के एक विशाल जत्थे के साथ सत्याग्रह कर जेल-यात्रा की थी। इसी कारण गुरुकुल अनिश्चितकाल के लिए बन्द कर दिया गया था। जब सन् १९३५ ई. में कांग्रेस असेम्बलियों में जाने का कार्यक्रम बनाया और चुनाव लड़े, तब भी सबसे अधिक संख्या निर्वाचित सदस्यों में आर्यसमाजियों की ही थी।

अब आती है भारत की आजादी की आखिरी मुहिम,

सन् १९४२ ई. का आन्दोलन। इस आन्दोलन में 'करो या मरो' के गांधी जी के नारे पर अपनी जान की बाजी लगाने वाले देशभक्तों में भी सबसे अधिक संख्या आर्यसमाजियों की ही थी। मिलाप परिवार, प्रताप परिवार के सभी सदस्य गिरफ्तार कर लिये गए थे। गुजराँवाला गुरुकुल (पंजाब) में तो पुलिस ने घुसकर छात्रों तथा अध्यापकों को पीटा था। गुरुकुल घरौंडा (करनाल) को जिलाधीश जब्त करने का षड्यन्त्र कर रहा था। क्योंकि वहाँ के छात्रों ने अपने आचार्य स्वामी रामेश्वरानन्द जी के निर्देश से रेलवे लाइन को उखाड़ दिया था। गुरुकुल झज्जर (रोहतक) में महीनों पुलिस घेरा डाले पड़ी रही थी, क्योंकि वहाँ के आचार्य भगवानदेव जी (स्वामी ओमानन्द सरस्वती जी) सरकार-विरोधी गतिविधियों में संलग्न थे। स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी को लाहौर के शाहीकिले में नज़रबन्द किया गया था। क्योंकि इन्होंने हरियाणा प्रान्त में घूमकर किसानों से अपील की थी कि-वे सेना में भरती हुए अपने लोगों को कहें कि वे देशभक्तों पर गोली न चलाएँ। इसको सरकार ने राज्य-विद्रोह समझा। उस समय स्वामीजी ने अंग्रेज सरकार को यह भी कहा कि हमारे सत्याग्रहियों से सरकार वह व्यवहार करे जैसाकि एक सरकार दूसरे देश के बन्दियों से किया करती है। पाठक इसकी गहराई में जाने का प्रयास करें। उस समय सरकार ने जिन तीन व्यक्तियों को सबसे अधिक भयानक करार दिया था, उनमें से अलगूराय शास्त्री तथा पं. शिवदयालु दो आर्यसमाजी थे।[७] मार्शल लॉ के समय पंजाब के प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता पं. रामभजदत्त जी, गुप्तरूप से कांग्रेसी नेताओं से सम्पर्क कायम करके उनका सन्देश जनता तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य करते थे। इस आन्दोलन में हजारों आर्यों के घर उजड़े तथा हजारों ही हण्टरों के शिकार बने।[८] आर्यसमाजी संस्थाएँ देशभक्तों के लिये विश्वस्त आश्रयस्थल बने। आर्यसमाजी उपदेशकों ने गाँव-गाँव में जाकर राष्ट्रभक्ति की जो मशाल जलाई उसका उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। इस प्रकार यदि हम सत्याग्रह की घोषणा से लेकर पंजाब में मार्शल लॉ और अमृतसर में कांग्रेस अधिवेशन की समाप्ति तक के विस्तृत इतिहास को देखें तो उस समय के उत्तरी भारत के स्वाधीनता-संग्राम में आर्यसमाजियों की संख्या सर्वाधिक पाते हैं।

सशस्त्र क्रान्ति में योगदान

स्वराज्य-प्राप्ति के इस शान्तिमय आन्दोलन के अतिरिक्त एक दूसरा युद्ध भी चल रहा था, जिसे हम सशस्त्र क्रान्ति का नाम दे सकते हैं। इस युद्ध के सभी प्रमुख संचालक वे लोग थे, जिन्होंने या तो महर्षि दयानन्द सरस्वती के चरणों में बैठकर शिक्षा प्राप्त की थी या फिर आर्यसमाज के प्रभाव में आकर अपने जीवन का निर्माण किया था। इस क्रान्तिकारी टोली पर यदि हम उड़ती नजर से भी दृष्टिपात करें तो भी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा पं. रामप्रसाद बिस्मिल का नाम तो समुद्र के प्रकाशस्तम्भ की भाँति हमारी आँखों से नहीं बच सकता।

श्यामजी कृष्ण वर्मा महर्षि दयानन्द सरस्वती का वह प्रथम शिष्य था जिसने महर्षि की आज्ञा अनुसार इंग्लैण्ड में जाकर वहाँ पर अध्ययनरत भारतीय युवकों को राष्ट्रभक्ति का अविस्मरणीय पाठ पढ़ाया था। इन्होंने सन् १९०५ ई. में लन्दन में 'इण्डिया हाऊस' की स्थापना करके 'इण्डियन होमरूल सोसायटी' द्वारा भारतीय स्वाधीनता में जो महान् योगदान दिया, वह भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रतिपादित है। इनके द्वारा संचालित 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' नामक मासिक पत्र वहाँ पर रहनेवाले भारतीय युवकों के लिए राजनीति का धर्मशास्त्र बना हुआ था। उस पत्र में श्यामजी कृष्ण वर्मा के उत्तेजक विचारों से प्रभावित होकर मदनलाल धींगड़ा, भाई परमानन्द, लाला हरदयाल जैसे अनेक नवयुवक बलिदान की राह पर निकल पड़े, स्वतन्त्रता देवी को तृप्त करने के लिये।

इन्हीं की प्रेरणा पर विनायक दामोदर सावरकर विदेश गए और इनसे ही देशभक्ति की प्रेरणा प्राप्त की।[९] सावरकर अपने को स्वामी दयानन्द का शिष्य मानते थे।[१०] अण्डमान के कारावासकाल में वे कैदियों को सत्यार्थप्रकाश पढ़ाया करते थे।[११] इन्हीं सावरकर के शिष्य मदनलाल धींगड़ा थे जिन्होंने लन्दन में कर्जन वायली को नरक भेजकर भारतमाता के अपमान का बदला लिया था। ये स्वयं भी आर्यसमाजी परिवार से ही थे।[१२] इसी प्रकार ३१ वर्ष तक विदेशों की खाक छाननेवाले आजादी के परवाने राजा महेन्द्रप्रताप जी[१३],

भारत को स्वतन्त्र करने की धुन में अपने को विदेशों में लापता कर देनेवाले स्वामी श्रद्धानन्द जी के सुपुत्र-हरिश्चन्द्र जी, दिल्ली षड्यन्त्र में भाग लेनेवाले भाई बालमुकुन्द एवं बलराज[१४], (महात्मा हंसराज जी के सुपुत्र) दोनों ही आर्यसमाजी थे। प्रथम विश्वयुद्ध के समय विदेशी सरकार का तख्ता पलटने के लिये गदरपार्टी ने एक योजना बनाई थी। दुर्भाग्यवश भेद खुल जाने से वह सफल नहीं हुई, तब बगावत के अपराध में अनेकों को फाँसी, कारावास आदि दण्ड दिये गए थे। जिनमें पंजाब के सोहनलाल पाठक, राजस्थान के प्रताप सिंह बारहट, जगतराम हरियाणवी आदि दृढ़ आर्यसमाजी ही थे।[१५] इनमें प्रतापसिंह बारहट के पिता केसर सिंह बारहट तो ऋषि दयानन्द से दीक्षा लेकर उनके शिष्य बने थे।[१६] इन्होंने राजस्थान में जीवनभर क्रान्ति का प्रबल नाद बजाया। इसी वीर ने कोटा के एक दुश्चरित्र महन्त के यहाँ स्वामी श्रद्धानन्द के दामाद डॉ. गुरुदत्त तथा अन्य क्रान्तिकारियों के साथ डाका डालकर मिलनेवाला धन देश की स्वाधीनता के कार्य में लगाने की योजना बनाई थी,[१७] जिसमें इनको कालेपानी की सजा हुई थी। इसी प्रकार मैनपुरी षड्यन्त्र के मुखिया श्री पं. गेंदालाल जी दीक्षित तो प्रत्यक्ष रूप में आर्यसमाजी थे।[१८] आप आर्यसमाजी शिक्षण-संस्थाओं में अध्यापन कार्य करते रहे हैं।[१९] देवतास्वरूप भाई परमानन्द तो उन आर्यसमाजी उपदेशकों में से थे कि जो महर्षि दयानन्द सरस्वती के सन्देश के प्रचारार्थ विदेशों में भी गए थे और देशभक्ति के अपराध में जिन्हें फाँसी के बदले कालेपानी की यातनाएँ सहनी पड़ीं थीं।[२०]

काकोरी केस के शहीद

शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, ठाकुर रोशन सिंह तथा विष्णु शरण दुब्लिश, आर्यसमाज की पाठशला में ही दीक्षित हुए थे। इनको सशस्त्र क्रान्ति तथा देशभक्ति की दीक्षा देने वाले स्वामी सोमदेव जी आर्यसमाज के उपदेशक थे,[२१] जिन्होंने शाहजहाँपुर आर्यसमाज मन्दिर में इनको दीक्षा दी थी।[२२] बिस्मिल नित्य हवन करनेवालों में थे।[२३] ठाकुर रोशनसिंह अपने को आर्यसमाजी मानते थे।[२४] विष्णुशरण दुब्लिश आर्यसमाज के सदस्य रहे।[२५] फाँसी के बाद राजेन्द्रसिंह लाहड़ी की लाश का तो आर्यसमाजियों ने जुलूस निकाला था तथा सम्मानपूर्वक उनकी अन्त्येष्टि भी की थी।[२६]

अमर शहीद सरदार भगतसिंह

अमर शहीद सरदार भगतसिंह को तो देश पर बलिदान होने की घुट्टी बचपन में उसी समय पिला दी गयी थी, जब उनके दादा सरदार अर्जुनसिंह ने आर्यसमाज की वेदी पर उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया था। इस घटना का वर्णन करते हुए सरदार भगतसिंह की सगी भतीजी वीरेन्द्र सिन्धु लिखती हैं कि-"....जब उनके बड़े पोतों जगजीतसिंह और भगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, तो उन्होंने एक को अपनी बायीं भुजा में और दूसरे को दायीं भुजा में भरकर यह संकल्प किया-मैं अपने दोनों वंशधरों को इस यज्ञवेदी पर खड़े होकर, देश की बलिवेदी के लिये दान करता हूँ?।"[२७]

सरदार अर्जुनसिंह को देश को आजाद कराने की प्रेरणा सीधे महर्षि दयानन्द से मिली थी। महर्षि दयानन्द के विचारों ने उनको इतना प्रभावित किया कि वे न केवल नित्य हवन करनेवाले, कट्टर आर्यसमाजी बने, अपितु आर्यसमाज के सिद्धान्तों को पूर्णरूपेण हृदयंगम करके आर्यसमाज के प्रामाणिक प्रसिद्ध उपदेशक और शास्त्रार्थ-महारथी भी बने। इस प्रसंग का उल्लेख सरदार भगतसिंह की सगी भतीजी वीरेन्द्र सिन्धु ने इस प्रकार किया है-

"सरदार अर्जुनसिंह ने ऋषि दयानन्द के दर्शन किये तो मुग्ध हो गये और उनका भाषण सुना तो नवजागरण की सामाजिक सेना में भरती होकर आर्यसमाजी बन गये। वह उन थोड़े से लोगों में थे, जिन्हें स्वयं ऋषि दयानन्द ने दीक्षा दी थी, यज्ञोपवीत अपने हाथ से पहनाया था। यह सरदार अर्जुनसिंह का सांस्कृतिक पुनर्जन्म था। मांस खाना उन्होंने छोड़ दिया, शराब की बोतल नाली में फेंक दी, हवन-कुण्ड उनका साथी हो गया और सन्ध्या-प्रार्थना सहचरी। उनका जीवन पूरी तरह बदल गया था और यह बदल एक क्रान्तिकारी छलांग थी। ... सचमुच सरदार अर्जुनसिंह का आर्यसमाजी होना एक बड़ा क्रान्तिकारी कदम था। इसे यों समझा जा सकता है कि किसी हिन्दू का आर्यसमाजी हो जाना ही बड़ी बात थी, फिर सरदार अर्जुनसिंह तो सिख से आर्यसमाजी हुए थे। मन्दिर से ही

आर्यसमाज का भवन काफी दूर था, पर वह तो गुरुद्वारे से चलकर आर्यसमाज भवन पहुँचे थे, जो और भी दूर था।''

...''उन्होंने दीक्षा लेकर ही सन्तोष नहीं किया, अपने को इस योग्य भी बनाया कि दूसरों को दीक्षा दे सकें। उन्होंने ऋषि दयानन्द के मिशन को पूरी तरह समझा और अपने विचारों को पूरी तरह उनके साँचे में ढाला। उन्होंने आर्यसमाज के साहित्य का बहुत गहरा अध्ययन किया। इस गहराई का पता इससे चलता है कि सनातनधर्मी पण्डितों के साथ मूर्त्तिपूजा और श्राद्ध जैसे विषयों पर कई शास्त्रार्थों में यह ही आर्यसमाज के प्रमुख प्रवक्ता रहे और आर्यसमाज के उत्सवों में दूर-दूर भाषण देने के लिये जाते रहे। वे अपने क्षेत्र के प्रमुख आर्यसमाजी नेताओं में गिने जाते थे और हर काम में उनकी सलाह मानी जाती थी।''[२८]

सरदार भगतसिंह के पिता किशनसिंह भी आर्यसमाज के सदस्य रहे। इनके यहाँ सारे संस्कार आर्यसमाजी विधि से ही होते थे। अब भी होते हैं। ये आर्यसमाजी संस्थाओं में पढ़ते रहे हैं। इनके साथ यशपाल जी भी बचपन से गुरुकुल में पढ़ते रहे हैं।[२९] इनकी माताजी आर्यसमाजी थीं। सुखदेव भी बचपन में आर्यकुमार सभाओं में जाते थे।[३०] इनके चाचा अचिन्त्यराम जी आर्यसमाज के सदस्य थे। कमीशन के सामने गवाही देते हुए उन्होंने कहा था कि मैं तो आर्यसमाजी विधि से सुखदेव की लाश की अन्त्येष्टि करता।[३१] इन क्रान्तिकारियों को सर्वात्मना सहयोग देनेवाली देवियों में श्रीमती सुशीला, श्रीमती सुमित्रा एवं श्रीमती चन्द्रावती ने आर्यसमाज से ही प्रेरणा प्राप्त की थी।

आर्यविद्वानों में पं. मुंशीराम जी शर्मा 'सोम', सत्यदेव विद्यालङ्कार, स्वामी आत्मानन्द जी, पं. जगदीशचन्द्र शास्त्री, स्वामी भीष्म जी, चन्द्रकवि आदि के सहयोग को भी नहीं भुलाया जा सकता, जिन्होंने न केवल क्रान्तिकारियों को आश्रय दिया अपितु अपनी लेखनी से क्रान्ति के सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। चन्द्रकवि ने आर्यसमाज के उत्सव पर सन् १८५७ ई. के अंग्रेजों के अत्याचार की दर्दभरी कविता सुनाई तो उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाकर कालेपानी की सजा दी गई।

१९४२ की क्रान्ति

इस संग्राम में आर्यसमाज और आर्यसंस्थाओं के सहयोग से अंग्रेज सरकार तिलमिला गई। इस समय उसके कोप का भाजन होनेवालों में आर्यसंस्थाएँ ही सर्वाधिक रहीं। डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर में तो पुलिस ने छात्रों पर निर्ममता से गोलियाँ चलाई थीं। गुरुकुल डोरली (मेरठ) पर तालाबन्दी कर दी गई थी। आर्यसमाज नरेला में हवन कर रहे ७० आर्यसमाजियों को पकड़कर जेल में डाल दिया गया था। नागपुर में श्री कालूराम नामक एक आर्यवीर को फाँसी दी गई थी। स्वतन्त्रतानन्द जी को पंजाब के गवर्नर का वध करने के आरोप में नजरबन्द कर दिया था। स्वामी ईशानन्द जी, स्वामी धर्मानन्द जी, इनके पुत्र हरिदत्त जी को लालकिले के तहखाने में बन्द कर दिया गया था।

आज़ाद हिन्द सेना

देश में असहयोग सत्याग्रह एवं सशस्त्र क्रान्ति के अतिरिक्त देश को आजाद कराने में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा देश के बाहर गठित आजाद हिन्द सेना के योगदान को किसी भी प्रकार भुलाया नहीं जा सकता। इस सेना को भी आर्यसमाज के लोगों ने अनुपम योगदान दिया। इसके तीन प्रमुख नायकों में से श्री सहगल आर्यसमाजी परिवार की ही देन थे। उनके पिता महाशय अछरूराम जी जाने-माने आर्यसमाजी थे। जिन्होंने जानबूझकर ही अपने बेटे को इस भट्टी में झोंका था। जब लाल-किले में इस सेना पर अभियोग चला तब इनके बचाव-पक्ष के वकीलों की जो कमेटी बनी उसमें बख्शी टेकचन्द तथा दीवान बद्रीदास के रूप में आर्यसमाज ने योगदान करके अपनी राष्ट्रनिष्ठा को व्यक्त किया था। इसके अतिरिक्त सामान्य सैनिकों के रूप में इस सेना में भरती होकर योगदान करनेवाले आर्यसमाजियों की संख्या तो अनगिनत है।

सन् १८५७ ई. के स्वाधीनता-संग्राम में गुरु विरजानन्द दण्डी और महर्षि दयानन्द सरस्वती का योगदान

इस विषय में अनुसन्धानकर्त्ताओं ने अभूतपूर्व परिश्रम के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि सन् १८५७ ई. के स्वाधीनता संग्राम में गुरु विरजानन्द दण्डी और महर्षि दयानन्द सरस्वती का अभूतपूर्व योगदान था। विद्वानों के निष्कर्षों का सार श्री निहालसिंह आर्य जी ने संकलित

करके विवेचना के साथ प्रकाशित किया था। उनके लेख को यथारूप यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ- ''सन् १८५७ में अंग्रेजों ने प्लासी की लड़ाई जीतने के बाद से भारत को पूर्णतया लूटा दबाया और लार्ड डलहौजी ने तो २० हजार से अधिक पुरानी जमींदारियों को अपहरण-नीति के तहत जब्त करके हर प्रकार से हमारा राजनैतिक, शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक, व्यापारिक और औद्योगिक शोषण किया तो सारे देश में सर्वत्र अत्याचारों के विरुद्ध त्राहि-त्राहि मच गई। चारों ओर राजा, नवाबों और जनता में विद्रोह की अग्नि जलने लगी, साधुजन आन्दोलित हुए। राष्ट्रीय विपत्ति में साधुवर्ग सदा आगे रहा है।

१८५७ संग्राम में सन्तों का प्रेरक संयोजन

इन विद्रोही संन्यासी-सन्तों की संख्या दो-ढाई हजार थी। जिनमें अगवा साढ़े चार सौ साधु थे जिन्होंने सर्वखाप पंचायत के लेखानुसार स्वामी विरजानन्द को फाल्गुन मास की पूर्णमासी सं. १९०७ विक्रमी (सन् १८५० ई.) को मथुरा में 'भारत गुरुदेव' की पदवी दी थी इसलिए आर्यजगत् में भी केवल इन्हीं के नाम में गुरु पद लगाया जाता है। उक्त संग्राम में इन सन्तों के निर्देशक सवा सौ साधु और इन सबके प्रमुख संयोजक-प्रेरक, वेद संस्कृत के मर्मज्ञ योगी संन्यासी चार महापुरुष थे जो बाल ब्रह्मचारी थे। प्रथम हिमालय के योगी १६० वर्षीय स्वामी ओमानन्द, दूसरे उनके शिष्य कनखल के स्वामी पूर्णानन्द, तीसरे उनके शिष्य मथुरा में स्वामी विरजानन्द और चौथे उनके शिष्य ३३ वर्षीय गोलमुख वाले स्वामी दयानन्द सारे भारत में साधुओं और क्रान्तिकारी योद्धा राजा नवाबों के उत्साहवर्धक संयोजक थे।

(इसकी विस्तृत चर्चा लेख के अन्त में की जायेगी।)

विशेष ज्ञातव्य बातें-

* १८५४ से ५६ ई. तक मथुरा में गुरु विरजानन्द जी ने लाखों लोगों को बुलाकर श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर स्वाधीनता संग्राम का प्रबल गुप्त प्रचार किया था, जिसमें विशाल हरियाणा की जनता अधिक थी।

* क्रान्ति प्रारम्भ के लिये ३ मई निश्चित की थी। मथुरा सभाओं में स्वामी दयानन्द, राव तुलाराम और राजा नाहरसिंह भी सम्मिलित थे।

* गुरु विरजानन्द के आदेश से सर्वत्र अंग्रेज़ स्त्री-बच्चों को सुरक्षित रखा।

* यह गदर या केवल सैनिक क्रान्ति नहीं थी, अपितु दो राष्ट्रों का स्वाधीनता-संग्राम था, 'राज बदलो' क्रान्ति-युद्ध था।

* साधुओं फकीरों ने स्थान-स्थान पर अपने कई-कई नाम और वेश, रूप बदले थे। गुप्त भाषाओं के गुप्त संकेत भी थे।

* तीर्थस्थानों, पर्वों और मेलों पर ये साधु गुप्त सन्देश देते थे। भारतीय सेनाओं में भी कमाल का प्रचार और देशप्रेम जाग्रत था।

* स्वामी दयानन्द जनसामान्य से जंगलों-वनों में गुजराती हरियाणवी मिश्रित सामान्य हिन्दी भी बोलते थे, क्योंकि उनके पूर्वज हरयाणा के थे।

* अंग्रेजों पर भेद खुल जाने और घरवालों द्वारा पकड़ा जाने के कारण ही विशेषतया गुप्त रहते थे। उनका नाम गोलमुख वाला साधु प्रचलित था।

* संग्राम-प्रचार में स्वामी दयानन्द के बदले हुए नाम मूलशंकरा, रेवानन्द और दलालजी थे।

* गृहत्याग काल से ही स्वामी दयानन्द ज्ञान और योग के तीव्र पिपासु थे। वे १८५५ ई. में हरिद्वार कुम्भ मेले में स्वामी पूर्णानन्द से व्याकरणसूर्य गुरु विरजानन्द का पता पाकर भी सीधे मथुरा जभी नहीं गए, अपितु पूर्णानन्द से प्रेरित क्रान्ति से योजनाबद्ध होकर श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर मथुरा पंचायत में पहुँचे और ११ अक्तूबर १८५५ में पुनः स्वामी पूर्णानन्द की गुप्त साधु सभा में हरिद्वार गए। खापों का इतिहास बताता है कि इसी वर्ष के अन्त में बिठूर में ५ दिन तक नाना साहब से मिले जो उन्हीं के समवयस्क थे। वहाँ विशेष योजना बन रही थी। १८५६ ई. तक तीर्थस्थानों पर नाना साहब से उनकी मुलाक़ात ११ बार हुई थी। उन्होंने नाना साहब से कहा था कि अंग्रेजों से स्वतन्त्र होने पर पंचायती राज चलाकर सारे भारत को स्वर्ग बनाएँगे। ऋषि ने देशभ्रमण के दौरान ही दिल्ली के चारों ओर खाप पंचायतों में देशप्रेम, वीरता, सदाचार और सात्विक भोजन देखा था।

मई १८५७ से नवम्बर १८६० तक अज्ञात

महर्षि दयानन्द के जीवन में ये तीन वर्ष 'अज्ञातवास' कहलाते है, परन्तु पंचायती रिकॉर्ड और स्वामी वेदानन्द वेदवागीश के लेखानुसार इन तीन वर्षों में विशेषतया गुप्त रहकर स्वामी जी ने संग्राम की विफलता के कारणों को जानने और अँग्रेजी अत्याचारों से शोषित जनता की जानकारी लेने को सारे देश का गुप्त भ्रमण किया था। जिसमें वह श्वेत अश्वारोही भी रहे थे। श्री स्वामी भीष्म आर्यभजनीक, श्री वेदवागीश और मथुरा गुरु विरजानन्द का लेखक मिर्जा अफ़ज़ल बेग भी इस घटना की पुष्टि करते है। भालौट ग्राम के श्री सत्यमुनि (शेरसिंह) ने अपने दादा की बताई यह घटना २७ मई, १९७८ और १९७९ में दो बार मुझे भी नरेला में बताई थी। पं. बस्तीराम ने दो में से गोलमुख वाले अश्वारोही का नाम स्वामी दयानन्द बताया था क्योंकि वे १८५७ से १८६९ तक कई बार महर्षि जी से मिले थे।

इन तीन वर्षों की अज्ञातयात्रा में भारत के बड़े-बड़े राजविद्रोहियों के क्रान्ति-कार्यों की खुफिया जाँच करनेवाले स्वदेशी-विदेशी सरकारी कर्मचारियों से स्वामी दयानन्द की ३१ बार मुठभेड़ हो गयी थी मगर आखिर में उनके तेज से हतप्रभ होकर क्षमा माँग झुककर चले जाते थे। एक बार सन १८५८ में एक अंग्रेज़ नामालूम मुकाम पर १५ घुड़सवारों सहित स्वामी जी के पास आ धमका और कुछ प्रश्नोत्तर कर उनकी दिव्य तीव्र ज्योति से बेसुध होकर कदमों पर गिर पड़ा और क्षमासहित मसीहा मानकर उन्हें १२५ रुपए देकर चला गया। फिर नवम्बर १८६० में स्वामी जी मथुरा में गुरु विरजानन्द से स्पष्टया मिले और ढाई वर्ष पर्यन्त अष्टाध्यायी, महाभाष्य, दर्शन, उपनिषद, निरुक्त ग्रन्थ पढ़े। व्याकरण पाठ के समय के अतिरिक्त समय एकान्त में भी इन अपूर्व गुरु-शिष्य का समागम होता था।

(स्वामी वेदानन्द द. तीर्थ)

''जब गुरु विरजानन्द क्रान्ति पश्चात् तीन वर्षों के देश-भ्रमण की इतिवृत्ता दयानन्द जी से सुन चुके तब राजनयिक गोष्ठी के लिये दयानन्द को विश्वस्त समझके एकान्त में उनसे वार्तालाप करने लगे।''

सुधारक- (देव पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती पृष्ठ ३६)

(गुप्तवार्ता लेख की नकल)

''स्वामी दयानन्द धार्मिक नेता ही नहीं थे वे सच्चे राजनैतिक नेता भी थे। एक बार हम उनके साथ जिला एटा में सौरों के मुकाम पर थे। उस वक्त उनसे एक साधु मिलने आया। उसने ढाई दिन रहकर उससे बातचीत करी थी। फिर चला गया था। श्री स्वामी जी से हमने इस साधु के हसब-नसब की बात पूछी तब स्वामी जी मौन रहे। हमने बहुत ज्यादा इसरार किया और हल्फ लिया कि हम आपकी बात को नहीं बताएँगे।''

इस पर स्वामी जी ने कहा- ''इनका पहला नाम गोविन्दराम है और अब इनका नाम गुरु परमहंस है। ये जाति के ब्राह्मण हैं। इनका एक साथी रामसहायदास था जो अब से ८ महीने पहले मर गया है। उसने अपना नाम जगनानन्द धरा था। जो जाति का कायस्थ था। हम सब लोग सन १८५५ व ५६ में गुरु विरजानन्द से आज्ञा लेकर भारत के साधु-समाज के हुक्म से क्रान्ति यज्ञ में आहुति डालते रहे थे। ये रामसहायदास और गोविन्दराम रानी झाँसी के यहाँ रहते थे। रानी के बलिदान होने पर ये दोनों साधु बन गए थे। इस तरह १२५ हमारे पहले साथी थे। हम १८५७ में कभी घोड़ों पर, कभी पैदल चले थे और ऊँटों पर सन् १८५५ ई. से सन् १८५८ के शुरु तक देश के क्रान्ति-यज्ञ में आहुति डाली थी।'' सम्भवत: यह उपरोक्त गोविन्दराम नाटोरे की धर्मात्मा रानी भवानी का वंशज राजा था।

(कथन चौ. नानकचन्द एटा पंचायत मन्त्री)

२) इस संग्राम में भारतीयों की आपसी फूट, उत्तम अस्त्राभाव, अनुशासनहीनता तथा कुशल नेतृत्व के अभाव में निश्चित तिथि से पहले ही मेरठ में युद्ध छिड़ जाने से मिली असफलता से महर्षि जी बहुत दुखित हुए और इसलिये एक बार कहा था कि- ''सारे भारत में घूमने पर भी मुझे धनुर्वेद के केवल ढाई पन्ने ही मिले हैं, यदि मैं जीवित रहा तो सारा धनुर्वेद प्रकाशित कर दूँगा।'' स्वामी जी ने यही बात दोबारा नवम्बर १८७८ ई. में अजमेर में कही थी।

(अजमेर और ऋषि दयानन्द प्रि. ६१)

३) सन १८५८ में क्रान्ति को कुचलने के बाद महारानी

विक्टोरिया ने कहा था कि भारतीय प्रजा के साथ माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया का व्यवहार किया जाएगा। महर्षि जी ने इसीलिये सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा है कि कोई कितना ही करे परन्तु स्वदेशी राज्य सर्वोपरि उत्तम होता है...प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं होता।''

४) १८५७ संग्राम में अँग्रेजी तोपों द्वारा महलों के तोड़ने, बाघेरों द्वारा लड़ने की घटना महर्षि ने स्वयं देखी थी इसलिये ११वें समुल्लास में लिख दिया कि ''जब सन १८५७ ई. के वर्षों में तोपों के मारे मन्दिर मूर्तियाँ अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं तब मूर्ति कहाँ गई थीं। प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता से लड़े, शत्रुओं को मारा परन्तु मूर्त्ति एक मक्खी की टाँग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश (समान) कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते।'' यह घटना उनका प्रत्यक्षदर्शी होना सिद्ध करती है।

सन्दर्भ सूत्र

१. सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

२. सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

३. स्वामी दयानन्द सरस्वरती व्यक्तित्व एवं विचार, पृष्ठ १०८

४. संस्कृत वाक्य प्रबोध राजसभा प्रकरण

५. सत्यनिर्णय-परिशिष्ट, लेखक-ज्ञानचन्द्र, एवं भारतीय लोक समिति के प्रथम अधिवेशन पर श्री पं. रामचन्द्र जी देहलवी द्वारा दिया गया अध्यक्षीय भाषण, पृष्ठ ५

६. आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश का इतिहास, पृष्ठ ३३

७. सम-पृष्ठ ७२

८. सम-

९. आर्यसमाज का इतिहास भाग-२, पृष्ठ ३७६। हमारा राजस्थान पृष्ठ २९२। भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ. २७

१०. नवभारत टाइम्स १६-८-५७

११. आजीवन कारावास ३, पृष्ठ ५९९

१२. आर्यसमाज का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ३६५

१३. बिस्मिल की आत्मकथा, पृष्ठ २८

१४. आर्यसमाज का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ३६५

१५. विचित्र जीवन, पृष्ठ ५६४

१६. हमारा राजस्थान, पृष्ठ २९५-९६

१७. हमारा राजस्थान, पृष्ठ ३०९

१८. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, ले. मन्मथनाथ गुप्त, पृष्ठ १०३

१९. सम-पृष्ठ १०३

२०. कालेपानी की आपबीती

२१. सम-पृष्ठ २४

२२. सम-पृष्ठ १६

२३. सम- पृष्ठ १७

२४. भारत के क्रान्तिकारी, ले. मन्मथनाथ गुप्त, पृष्ठ १७०

२५. आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का इतिहास, पृष्ठ ३४

२६. काकोरी के अमर हुतात्मा, ले. रामदुलारे त्रिवेदी, पृष्ठ १०५

२७. युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युञ्जय पुरखे- पृष्ठ २२, लेखिका-वीरेन्द्र सिन्धु

२८. सम-पृष्ठ १६-१७

२९. सम- पृष्ठ २७। लाला लाजपतराय, लेखक-अगलूराय शास्त्री। सिंहावलोकन, पृष्ठ ४४, लेखक-यशपाल। दैनिक वीर अर्जुन १५-०१-१९७०।

३०. चन्द्रशेखर आजाद, पृष्ठ १५५ लेखक-विश्वनाथ वैशम्पायन

३१. भारत सन् ५७ के बाद, लेखक-शंकरलाल तिवारी

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

जब-जब वेद के मन्त्रों से मानव को सजाया जायेगा।
तब-तब मेरे गीतों से त्यौहार मनाया जायेगा।।

जयदेव अवस्थी

(ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि....)

अद्‌भुत सृष्टि की रचना कर,
सामर्थ्य तूने निज दर्शाया।
तेरे तेज को वरण करें हम
तेरा पार नहीं पाया।।

जब-जब तेरे सुमिरन से, यह मन निर्मल हो जायेगा।
तब-तब मेरे गीतों से त्यौहार मनाया जायेगा।।
जब-जब वेद के मन्त्रों से मानव को सजाया जायेगा।
तब-तब मेरे गीतों से त्यौहार मनाया जायेगा।।

(ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव, यद्भद्रं तन्न आसुव।)

सम्पूर्ण दु:खों, दुर्गुण, व्यसनों को,
हे प्रभु! हमसे दूर करो।
जो-जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव-
पदार्थ हैं, हमको प्राप्त करो।

जब-जब ऐसी कृपा होगी तो स्वर्ग यहीं बस जायेगा।
तब-तब मेरे गीतों से त्यौहार मनाया जायेगा।।
जब-जब वेद के मन्त्रों से मानव को सजाया जायेगा।
तब-तब मेरे गीतों से त्यौहार मनाया जायेगा।।

(ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्....)

सूरज-चाँद, आकाश-पाताल,
तेरे गर्भ में ही समाया हुआ।
सारे जगत् का स्वामी तू ही है,
सबमें तू ही समाया हुआ।।

जब-जब योगाभ्यास के द्वारा, तुझसे मिलन हो जायेगा।
तब-तब मेरे गीतों से त्यौहार मनाया जायेगा।।
जब-जब वेद के मन्त्रों से मानव को सजाया जायेगा।
तब-तब मेरे गीतों से त्यौहार मनाया जायेगा।।

(ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्...)

तू ज्ञान स्वरूप है-स्वयम्-प्रकाशित,
हमको भी ऐसे पथ पर चला।
जिस पर चले हैं आप्त पुरुष,
वैज्ञानिक, राजा, साधु, भला।।

जब-जब अच्छे कर्म करेंगे, 'देव' तेरी 'जय' गायेगा।
तब-तब मेरे गीतों से त्यौहार मनाया जायेगा।।
जब-जब वेद के मन्त्रों से मानव को सजाया जायेगा।
तब-तब मेरे गीतों से त्यौहार मनाया जायेगा।।

जोधपुर, राजस्थान

शोक समाचार

आर्यसमाज के विद्वान् आचार्य विष्णुमित्र वेदार्थी की पूज्या माता **श्रीमती मगनी देवी** का दिनांक २० जनवरी, २०२१ को बिजनौर (उ.प्र.) स्थित उनके निवास पर निधन हो गया। उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति के साथ २१ जनवरी को बैराज घाट श्मशान बिजनौर में किया गया।

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि ''**कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।**'' यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से १५ फरवरी २०२१ तक)

१. श्री नरेन्द्र आर्य, बैंगलोर २. श्रीमती चम्पा देवी, अजमेर ३. श्री मुकेश नवाल, अजमेर ४. श्री आयुष मालू, किशनगढ़ ५. सुश्री अक्षिता तिवारी, अजमेर ६. श्री राजेन्द्र सिंह, नई दिल्ली ७. डॉ. बी. एम. म्हेत्रे, हैदराबाद ८. श्रीमती मोनिका एवं श्री इन्दुशेखर पञ्चोली, अजमेर ९. श्री आत्मदेव, दिल्ली १०. श्रीमती रश्मि पारवानी, जयपुर ११. श्री रामचन्द्र हंस, भुवनेश्वर १२. श्री रामजीवन मिश्रा एवं श्रीमती द्रौपदी मिश्रा, जयपुर १३. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(०१ से १५ फरवरी २०२१ तक)

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बालाकैन्ट २. श्रीमती चम्पा देवी, अजमेर ३. श्री विवेक चण्डक, अजमेर ४. श्रीमती विनीता चौहान, चुरु ५. श्री विपिन कुमार त्यागी, मुजफ्फरनगर ६. श्री सुरेन्द्र डागर, नई दिल्ली ७. पण्डित भवानीशंकर शर्मा, रतलाम ८. श्री विजय सिंह सांगवान, भिवानी ९. श्रीमती मोनिका एवं श्री इन्दुशेखर पञ्चोली, अजमेर १०. श्री राजेश कुमार, गुरुग्राम ११. श्री रमेश गोयल, अजमेर १२. श्रीमती विनीता चौहान, चुरु १३. श्री रामचन्द्र हंस, भुवनेश्वर १४. श्री हरिप्रसाद शर्मा, अजमेर १५. श्री माणकचन्द्र जैन, छोटी खाटु।

अन्य प्रकल्पों हेतु सहयोग राशि

१. मैसर्स केवलराम एण्ड कम्पनी, जैसलमेर २. श्री बाबूलाल चौहान, अजमेर ३. श्री यशपाल सिंह आर्य, मेरठ ४. डॉ. वेदपाल, मेरठ ५. श्री चन्द्रसेन हरिसिंघानी, अहमदाबाद ६. श्री मुकेश कुमार, अजमेर ७. महात्मा वेदपाल जी, पानीपत ८. श्री रामचन्द्र हंस, भुवनेश्वर, ९. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बालाकैन्ट।

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

‘सत्यार्थ प्रकाश’ एवं ‘महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र’ प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ ‘सत्यार्थप्रकाश’ आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति ‘वैचारिक क्रान्ति’ को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: ‘सत्यार्थ प्रकाश’ की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व ‘विश्व पुस्तक मेला’ दिल्ली में प्रतिवर्ष ‘सत्यार्थप्रकाश’ के साथ ‘महर्षि का जीवन-चरित्र’ एवं ‘आर्याभिविनय’ पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है।‘सत्यार्थप्रकाश’ ‘महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र’ के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ ‘सत्यार्थप्रकाश वितरण’ अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४